कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

आठहुँ सिद्धि, नवो निधि को सुख,
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
इन आँखनि सौं रसखानि कबौं,
ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौत के धाम,
करील को कुंजन ऊपर वारौं॥

: ३ :

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं,
गुञ्ज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी,
बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी।
भावतो तोहि कहा रसखानि,
सो तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की,
अधरान-धरी अधरा न धरौंगी॥

: ४ :

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना,
पग पैंजनी बाजतीं पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि बिलोकत,
वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए,
हरि-हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥

: ५ :

सेस महेस गनेस दिनेस;
सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड,
अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रटैं
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

: ६ :

सोहत हैं चँदवा सिर मोर के,
जैसिये सुन्दर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल बिराजति,
जैसो हिये बनमाल लसी है।
रसखानि बिलोकति बौरी भई
दृग मूँदि कै ग्वारि पुकारि हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा,
वह मूरति नैननि माँझ बसी है ॥

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी :

(१) अर्थ बताइए——मानुष, पसु, कालिंदी, निहारौं, अधरा, कछोटी, पैंजनी और कलानिधि ।

(२) तत्सम रूप बताइए——पाहन, पसु, ग्वारनि, सोभित, माँझ और स्याम ।

(३) तिहूँपुर, आठ सिद्धियों और नौ निधियों के नाम बताइए ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) रसखान ने किसकी उपासना में रचनाएँ की हैं ?

(५) अपनी रचनाओं में उन्होंने किस रस को प्रमुख स्थान दिया है ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) 'कोटिक हूँ कलधौत...ऊपर वारौं' का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए ।

(७) 'हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी' और 'छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं' में जो काव्यगत विशेषताएँ हैं उन्हें बताइए ।

४—रचना-सम्बन्धी

(८) रसखान की भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए।

: ८ :

मेरा बचपन

पं० जवाहरलाल नेहरू

[पं० जवाहरलाल नेहरू का जन्म प्रयाग में १४ नवम्बर सन् १८८९ को हुआ था। उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू न्यायालय-कानून के निष्णात पण्डित थे और इलाहाबाद के उच्च अधिवक्ता थे। उन्होंने जवाहरलाल को उच्च शिक्षा के लिए लन्दन भेजा। लन्दन के हैरो-विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वह बैरिस्टर हो गये। इसके बाद गान्धी जी की विचारधारा से प्रभावित होकर उन्होंने देशसेवा का व्रत लिया। गान्धी जी के असहयोग-आन्दोलन में उन्होंने बड़ा कार्य किया और कई बार जेल गये। सन् १९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब वह प्रधान मन्त्री बनाये गये। इस समय यही हमारे देश के नेता हैं और अपने अथक परिश्रम से उसका मस्तक ऊँचा कर रहे हैं। प्रस्तुत पाठ में उन्होंने अपने बचपन का मनोरंजक वर्णन दिया है।]

जब मैं दस वर्ष का था, तब मेरा प्रवेश एक नये और काफी बड़े मकान में हुआ। इस का नाम पिताजी ने 'आनन्द-भवन' रखा था। इस मकान में एक बड़ा बाग और तैरने का बड़ा-सा हौज था और यहाँ ज्यों-ज्यों नयी-नयी चीजें दिखाई पड़तीं, त्यों-त्यों मेरी तबीयत लहरा उठती। इमारत में नये-नये हिस्से जोड़े जा रहे थे और बहुत-सा खुदाई एवं चुनाई का काम हो रहा था। वहाँ मजदूरों को काम करते हुए देखना मुझे अच्छा लगता था।

मैं कह चुका हूँ कि मकान में तैरने के लिए एक हौज था। मैं तैरना जान गया और पानी के भीतर मुझे जरा भी डर नहीं मालूम होता था। गर्मी के दिनों में कई बार समय-समय पर मैं उसमें नहाया करता था। शाम को पिताजी के कई दोस्त तैरने आया करते थे। वह एक नयी चीज

थी । वहाँ तथा मकान में बिजली की जो बत्तियाँ लगायी गयी थीं, वे

इलाहाबाद में इन दिनों नयी बातें थीं। इन नहानेवालों के झुण्ड में मु

बड़ा आनन्द आता था और उसमें जो तैरना नहीं जानते थे, उनमें से किसी को धक्का देकर या पीछे खींचकर डराने में बड़ा ही आनन्द आता था। मुझे डाक्टर तेज बहादुर सप्रू का किस्सा याद आता है, जब कि उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्ट में नयी-नयी वकालत शुरू की थी। वह तैरना नहीं जानते थे और न जानना ही चाहते थे। वह पन्द्रह इंच पानी में पहली सीढ़ी पर ही बैठ जाते थे, और कसम खाने को एक सीढ़ी भी नीचे नहीं उतरते थे; और अगर कोई आगे खींचने की कोशिश करता, तो जोर से चिल्ला उठते थे। मेरे पिता स्वयं भी तैराक नहीं थे, मगर वह किसी प्रकार हाथ-पैर फट-फटा कर और जी कड़ा करके हौज के आर-पार चले जाते थे।

उन दिनों बोअर-युद्ध हो रहा था। उसमें मेरी दिलचस्पी होने लगी। बोअरों की तरफ मेरी सहानुभूति थी। इस लड़ाई की खबरों को पढ़ने के लिए मैं अखबार पढ़ने लगा। इसी समय एक घरेलू बात में मेरा चित्त रम गया। वह था मेरी एक छोटी बहन का जन्म! मेरे दिल में एक अर्से से एक रंज छिपा रहता था और वह यह कि मेरे कोई भाई या बहन नहीं है, जब कि और कइयों के हैं।

जब मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे भाई या बहन होने को है, तब मेरी खुशी का पार न रहा। पिताजी उन दिनों योरप में थे। मुझे याद है कि उस समय बरामदे में बैठा-बैठा बड़ी उत्सुकता से इस बात की राह देख रहा था। इतने में एक डाक्टर ने आकर मुझे बहन होने की खबर दी और कहा—शायद मजाक में—कि 'तुमको खुश होना चाहिये कि भाई नहीं हुआ, जो तुम्हारी जायदाद में हिस्सा बँटा लेता।' यह बात मुझे बहुत चुभी और मुझे गुस्सा भी आ गया—इस ख्याल पर कि कोई मुझे ऐसा कमीना ख्याल रखनेवाला समझे।

पिताजी की योरप-यात्रा ने काश्मीरी ब्राह्मणों में अन्दर ही अन्दर एक तूफान खड़ा कर दिया। योरप से लौटने पर उन्होंने किसी प्रकार का प्रायश्चित्त करने से अस्वीकार कर दिया। कुछ साल पहले एक दूसरे काश्मीरी पण्डित शिवनारायण दर, जो बाद में कांग्रेस के सभापति हुए थे,

इंग्लैंड गये थे और वहाँ से बैरिस्टर हो कर आये थे। लौटने पर बेचारे ने प्रायश्चित्त भी कर लिया, तो भी पुराने ख्याल के लोगों ने उनको जाति से बाहर कर दिया और उनसे किसी तरह का सम्पर्क नहीं रखा। इससे बिरादरी में करीब-करीब बराबर के दो टुकड़े हो गये थे। बाद को कई काश्मीरी युवक विलायत गये और लौट कर सुधार-दल में मिल गये। लेकिन उन सब को प्रायश्चित्त करना ही पड़ता था। यह प्रायश्चित्त-विधि क्या, एक तमाशा होता था, जिसमें किसी तरह की धार्मिकता नहीं थी। उसके माने केवल रस्म अदा करना था या एक गिरोह की बात को मान लेना होता था और दिल्लगी यह कि एक बार प्रायश्चित्त कर लेने के बाद ये सब हर तरह के नवीन-सुधारों के कामों में सम्मिलित होते थे—यहाँ तक कि ब्राह्मण और अहिन्दू के यहाँ भी आते-जाते थे और खाना खाते थे।

पिताजी एक कदम और आगे बढ़े और उन्होंने किसी रस्म या नाममात्र के लिए भी किसी प्रकार का प्रायश्चित्त करने से इन्कार कर दिया। इससे बड़ा तहलका मच गया, खास कर पिताजी की तेजी और अक्खड़पन के कारण। आखिरकार कितने ही काश्मीरी पिताजी के साथ हो गये और एक तीसरा दल बन गया। थोड़े ही साल के अन्दर, जैसे-जैसे विचार बदलते गये और पुरानी पाबन्दियाँ हटती गईं, ये सब दल एक में मिल गये। कई काश्मीरी लड़के और लड़कियाँ इंग्लैंड और अमेरिका पढ़ने गये और उनके लौटने पर प्रायश्चित्त का कोई सवाल पैदा नहीं हुआ। खान-पान का खास कर बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को छोड़कर, गैर काश्मीरियों, मुसलमानों तथा गैर हिन्दुस्तानियों के साथ बैठ कर खाना खाना एक मामूली बात हो गई। दूसरी जातिवालों के साथ स्त्रियों का पर्दा उठ गया और उनके मिलने-जुलने की रुकावट भी हट गयी। सन् १९३० के राजनीतिक आन्दोलन ने इस को एक जोर का आखिरी धक्का दिया। दूसरी बिरादरीवालों के साथ शादी-व्याह करने का रिवाज अभी बहुत नहीं बढ़ा है—हालाँकि दिन-दिन बढ़ती पर है। मेरी दोनों बहनों ने गैर-

काश्मीरियों के साथ शादी की, हमारे कुटुम्ब का एक युवक हाल ही में एक हँगेरियन लड़की ब्याह लाया है। अन्तर्जातीय विवाह पर एतराज धार्मिक दष्टि से नहीं, बल्कि ज्यादातर वंशवृद्धि की दृष्टि से किया जाता है। काश्मीरियों में यह अभिलाषा पायी जाती है कि वे अपनी जाति की एकता की ओर आर्यत्व के संस्कारों को कायम रखें। उन्हें डर है कि यदि वे हिन्दुस्तानी और गैर-हिन्दुस्तानी समाज के समुद्र में कूदेंगे, तो दोनों बातों को खो देंगे। इस विशाल देश में हम काश्मीरियों की संख्या सागर में बूँद के बराबर है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—वंशवृद्धि, अभिलाषा, संस्कार, आन्दोलन, प्रायश्चित्त और उत्सुकता।

(२) पर्यायवाची बताइए—बहन, युद्ध और मकान।

(३) विपरीतार्थक बताइए—जन्म, वृद्धि और आनन्द।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) बोअर युद्ध कहाँ और क्यों हो रहा था ?

(५) सन् १९३० के राजनीतिक आन्दोलन का वर्णन कीजिए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) 'अन्तर्जातीय...के बराबर है' का भावार्थ लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(७) पाठ के प्रथम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिए।

(८) विशेषण बनाइए—कुटुम्ब, राजनीति और सहानुभूति।

५—रचना-सम्बन्धी

(९) प्रस्तुत पाठ का भावार्थ अन्य पुरुष में लिखिए।

(१०) वाक्यों में प्रयोग कीजिए :—

लहरा उठना, राह देखना और बात चुभना।

: ६ :

फीजी के भारतीय

[हमारे देश के बहुत से निवासी विदेशों में रहते हैं। वहाँ वे व्यापार, खेती अथवा मजदूरी करते हैं। प्रायः उनके साथ वहाँ की सरकार का व्यवहार अच्छा नहीं है। अंग्रेजी शासन-काल में हम परतन्त्र थे; इसलिए हम उनके प्रति सहानुभूति रखते हुए भी कुछ कर नहीं सकते थे। अब हम स्वतन्त्र हैं और हमें उनकी कठिनाइयों पर ध्यान देने का पूरा अधिकार है। इस दिशा में हमारी सरकार विशेष प्रयत्न कर रही है। प्रस्तुत पाठ में फीजी के भारतीयों की दशा का वर्णन किया गया है।]

प्रशान्त महासागर के दक्षिण-पूर्वी भाग में फीजी नामक एक टापू है। कुछ वर्ष पूर्व यह टापू बिलकुल वन्य प्रदेश था। अंग्रेजों ने नये देशों की खोज में इसका भी पता लगाया और इस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। यहाँ जब अंग्रेज बस गये, तब प्रश्न यह उठा कि यहाँ व्यवसाय कैसे चलाया जाय? कुलियों की आवश्यकता थी। भारतवर्ष दासता की चक्की में पिस रहा था और वह दाने-दाने को मुहताज था। ऐसी दशा में विदेश के सुखद स्वप्नों की कल्पना करता हुआ भारतीयों का एक जत्था 'फीजी' जा पहुँचा और वहाँ के अंग्रेज शासकों तथा वहाँ के आदिम निवासियों के साथ मिलकर जीवन बिताने लगा। कई हजार भारतीय फीजी के टापू में बस गये।

सन् १९१७ ई० में भारत-सरकार ने 'डिफेंस आफ इंडिया रूल्स नामक आर्डिनेंस पास किया, जिससे विदेश-गमन पर रोक लग गयी। सन् १९१९ ई० में पोलीनेशिया के बिशप और मि० रैनकिन फीजी से भारत आये। उन्होंने फीजी में भारतीयों के बसने की एक योजना भारत-सरकार के सामने रखी। इस मिशन ने भारतीय श्रमिकों के सब ठीके रद्द कर दिये और उनके दो प्रतिनिधियों को व्यवस्थापिका-सभा में स्थान देने

की घोषणा की। सन् १९२० ई० में भारत-सरकार भारतीयों को इस बात पर फीजी भेजने के लिए सहमत हुई कि वहाँ भारतीयों के साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा कि किसी भी ब्रिटिश नागरिक के साथ होता है। इस बात को फीजी की सरकार ने मान लिया। भारत-सरकार ने अपने कुछ प्रतिनिधियों को फीजी भेजना चाहा, परन्तु अपनी विषम परिस्थितियों के कारण वे लोग न जा सके।

सन् १९२०-२१ ई० में फीजी में श्रमिक-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि फीजी की सरकार ने श्रमिकों का ठीका रद्द कर दिया। इससे वहाँ बहुत से भारतीय श्रमिक बेकार हो गये। ऐसी स्थिति में जो लोग भारत लौटना चाहते थे, उनको फीजी-सरकार ने स्वतन्त्र कर दिया। प्रवासी भारतीयों की दशा शोचनीय थी। कुछ प्रवासी भारत लौटे, परन्तु यहाँ वही बेकारी और भूखों मरना था। कुछ प्रवासियों का घर-द्वार सब कुछ नष्ट हो चुका था, इसलिए ऐसे भारतीयों को यहाँ आना व्यर्थ प्रतीत हुआ। जो प्रवासी भारतीय यहाँ आये, वे भी फीजी लौट जाना श्रेयस्कर समझने लगे। वहाँ उनका कोई न कोई व्यवसाय था। ऐसे अवसर पर 'फ्रेंडली सरविस कमेटी' नाम की प्रवासी भारतीयों की एक कमेटी ने बहुत काम किया। भारत से एक मिशन फीजी गया। वहाँ से लौटने पर उसने एक रिपोर्ट भारत-सरकार को दी, परन्तु वह कई कारणों से प्रकाशित न हो सकी।

सन् १९२९ ई० में फीजी का विधान फिर बदला। इसमें भारतीयों के तीन सदस्यों को व्यवस्थापिका-सभा में स्थान मिला, परन्तु यह साम्प्रदायिकता के आधार पर था, इसलिए भारतीयों ने इसका विरोध किया। जब दुबारा चुनाव हुआ, तब दो ही क्षेत्रों में भारतीय खड़े हुए और तीसरे में वे चुनाव लड़े ही नहीं। सन् १९३५ ई० में भारतीय प्रतिनिधियों के चुनाव के विपरीत नामज़द करने की प्रथा को अपनाना चाहा, परन्तु स्थानीय भारतीय संघ एवं कुछ योरोपीय जनता ने इसका विरोध किया। भारतीय सरकार ने भी चुनाव-पद्धति को मान्यता दी और ब्रिटिश सरकार से इसके लिए प्रार्थना की। ब्रिटिश सरकार ने निर्णय दिया कि तीन

भारतीय साम्प्रदायिक चुनाव द्वारा हों और दो भारतीय मनोनीत प्रतिनिधि हों।

फीजी में भारतीयों की मुख्य समस्या भूमि की है। वहाँ की ८० प्रतिशत भूमि वहाँ के आदिम निवासियों के अधिकार में है और २० प्रतिशत योरोपीय सरकार के हाथ में है। भारतीयों ने दोनों ही से पट्टे पर भूमि ले रखी है। फीजी की भूमि-सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए एक धारा सन् १९४० ई० में पास हुई है।

सन् १९४३ ई० में फीजी में एक बार फिर ईख के खेतों में विद्रोह हुआ। द्वितीय योरपीय महायुद्ध के कारण हर एक वस्तु के दाम बढ़ गये थे। फीजी के कृषकों ने भी गन्ने के मूल्य को बढ़ाना चाहा, पर वहाँ
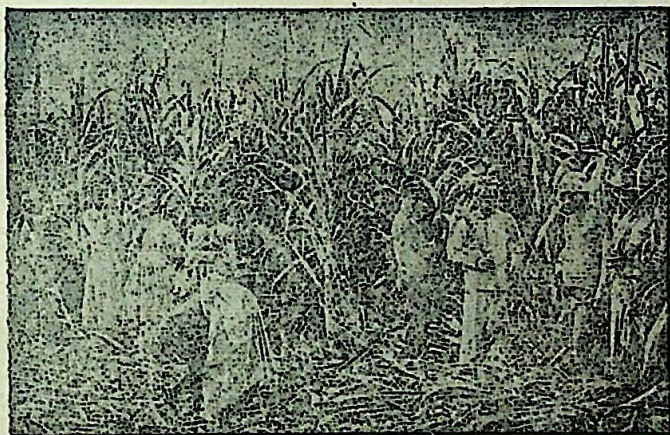
फीजी का एक गन्ने का खेत

की सरकार ने गन्ने का मूल्य बढ़ाने की आज्ञा नहीं दी। फल यह हुआ कि अधिकांश कृषकों ने असहयोग कर दिया। यह मामला इंग्लैंड की सरकार तक पहुँचा। वहाँ से एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ डॉ० सी० वाई० शेफर्ड फीजी भेजे गये। हाल ही में उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है।

इधर वहाँ प्रवासियों की शिक्षा में काफी सुधार हुआ है। सन् १९२९ ई० में वहाँ कुल तेईस स्कूलों में केवल एक ही भारतीय स्कूल था। आज-कल भारतीय स्कूलों की संख्या लगभग १०० है। फीजी में शिक्षा का प्रबन्ध एक परिषद् करती है, जिसके सदस्य दो भारतीय भी हैं। अब भारतीय सरकार के सुझाव के पश्चात् फीजी सरकार ने 'फीजी सिविल सरविस' में जाने के लिए भारतीयों के ऊपर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं रखा है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—टापू, आधिपत्य, व्यवसाय, मुहताज, कल्पना, प्रतिनिधि, व्यवस्थापिका-सभा, प्रवासी, आदिम, असहयोग और विशेषज्ञ।

(२) अन्तर बताइए—निर्णय और न्याय तथा प्रवासी और निवासी।

(३) विपरीतार्थक बताइए—दासता, जीवन और विषम।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) फीजी में भारतीय क्यों गये ?

(५) फीजी में भारतीयों की मुख्य समस्या क्या है ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) भावार्थ लिखिए—'भारतवर्ष दासता....जाकर बस गये।'

(७) अन्तिम अनुच्छेद का सारांश लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) व्याकरण से क्या हैं—साम्प्रदायिक, श्रमिक, कई और आदिम।

(९) 'बदला' किस प्रकार की क्रिया है ?

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) प्रस्तुत पाठ का सार लिखिए।

(११) अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए—प्रतीत, अवसर और ठीका।

—:०:—

: १० :

मधु का भिक्षुक

सुश्री महादेवी वर्मा

[श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सं० १९६४ वि० म फर्रुखाबाद में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। इसके बाद उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत लेकर एम० ए० पास किया। हिन्दी-

साहित्य के प्रति बचपन से ही उनका अनुराग था और वह अपने विद्यार्थी-जीवन में भी कविता करती थीं। दर्शन से उन्हें तब भी प्रेम था और अब भी है। इसलिए उनकी रचनाएँ दार्शनिक होती हैं। हिन्दी की वह उच्च कोटि की गीतकार हैं। उनके गीतों का हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। गद्य में उनके रेखाचित्र बड़े मार्मिक हैं। उनकी भाषा कुछ क्लिष्ट, पर प्रवाहपूर्ण है। प्रस्तुत कविता में अलि को संकेत करते हुए उन्होंने अपने भावों को अत्यन्त सुन्दर शैली में व्यक्त किया है। इसमें भौंरे को उसके अस्थिर प्रेम के लिए उपालंभ दिया गया है।]

: १ :

इन आँखों ने देखी न राह कहीं, इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं;
करती मिट जाने की साध कभी, इन प्राणों को मूक अधीर नहीं;
अलि छोड़ो न जीवन की तरणी, उस सागर में जहाँ तीर नहीं!
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ, प्रिय से कम मादक पीर नहीं!

: २ :

जिसको मरु-भूमि समुद्र हुआ, उस मेघ-व्रती की प्रतीति नहीं;
जो हुआ जल दीपकमय उससे, कभी पूछी निबाह की रीति नहीं;
मतवाले चकोर से सीखी कभी, उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं;
तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का, अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं।

: ३ :

पथ में नित स्वर्ण-पराग बिछा, तुझे देख जो फूली समाती नहीं;
पलकों से दलों में घुला मकरन्द, पिलाती कभी अनखाती नहीं;
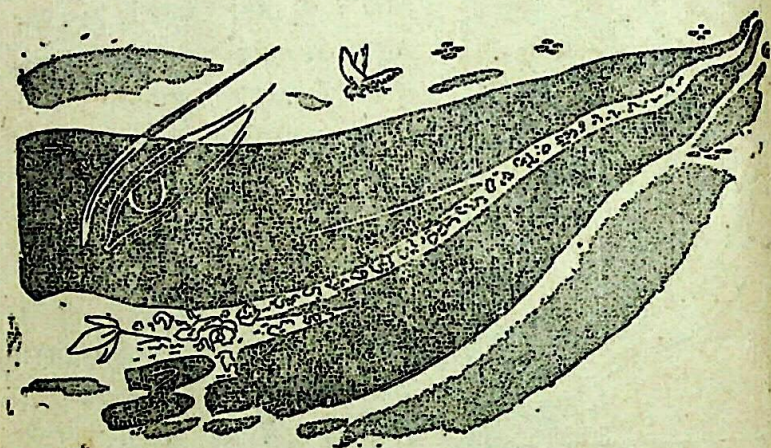
किरणों में गुँथी मुक्तावलियाँ, पहनाती रही सकुचाती नहीं;
अब भूल गुलाब में पंकज की, अलि कैसे तुझे सुधि आती नहीं ?

: ४ :

करते करुणा-घन छाँह वहाँ, झुलसाता निदाघ सा दाह नहीं;
मिलती शुचि आँसुओं की सरिता, मृगवारि का सिन्धु अथाह नहीं;
हँसता अनुराग का सिन्धु सदा, छलना की कुहू का निबाह नहीं;
फिरता अलि भूल कहाँ भटका, यह प्रेम के देश की राह नहीं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—नेह, नीर, मूक, तरणी, मादक, दीपक, तृप्ति, अकिंचन, पंकज, मृगदारि, निदाघ, अनुराग और सरिता।

(२) पर्यायवाची बताइए—पंकज, नीर, अलि और राह।

(३) विपरीतार्थक बताइए—दाह, अनुराग और तृप्ति।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) 'मधु का भिक्षुक' से आप क्या समझते हैं ?

(५) अलि से महादेवी जी क्या कहना चाहती हैं ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) कवयित्री ने मधु के भिक्षुक को किस बात के लिए उलाहना दिया है ?

(७) 'प्रिय से कम मादक पीर नहीं'—का भाव स्पष्ट कीजिए।

(८) 'अलि, तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं' की व्याख्या कीजिए।

४—रचना-सम्बन्धी

(९) महादेवी जी के विचारों को संक्षेप में लिखिए।

—:०:—

: ११ :

कस्तूरी की कहानी

[कस्तूरी एक प्रसिद्ध औषधि है। यह कब, कहाँ और किस प्रकार मिलती है---यही इस पाठ का विषय है। यह अत्यन्त सुगन्धित पदार्थ है। इसका मूल्य भी अधिक होता है। अपने प्रभाव में यह गर्म होती है। इस पाठ से विद्यार्थियों को इसकी पूरी जानकारी हो जायगी।]

कस्तूरी एक विशेष जाति के नर-हरिण की नाभि में मिलती है। ऐसे हरिण प्रायः चीन, रूस, आसाम, मध्यवर्ती एशिया, नेपाल आदि देशों में समुद्र के धरातल से ८,००० फुट से अधिक ऊँचाईवाले पहाड़ों पर मिलते हैं। इनकी नाभि में कस्तूरी केवल एक मास तक ही संगृहीत रहती है और वह भी उस ऋतु में जब हरिण को विशेष उत्तेजना मिलती है; अतएव पर्याप्त मात्रा में और उत्तम प्रकार की कस्तूरी हस्तगत करने के लिए इसी ऋतु में हरिण पकड़े जाते हैं। मृगनाभि में प्राप्त होनेवाली कस्तूरी की मात्रा हरिणों की अवस्था के ऊपर निर्भर करती है। छोटे हरिणों की नाभि में कस्तूरी बिलकुल नहीं मिलती। दो वर्ष तक की अवस्थावाले हरिणों की नाभि में कस्तूरी की मात्रा १-१।। तोला तक होती है, परन्तु यह अपरिपक्व और ठीक दूध की भाँति होती है; अतः इसकी गन्ध भी अप्रिय होती है। पूरी अवस्था के हरिणों की नाभि में से अधिक-से-अधिक १० तोले तक कस्तूरी निकलती है। साधारणतः हरिणों की नाभि में से २-२।। तोले तक ही निकल पाती है। कस्तूरी एक चौकोर या गोल थैली में जिसका व्यास लगभग १।। इञ्च होता है, बन्द रहती है। इसका धरातल चपटा एवं फिसलनेवाला होता है। इसमें एक छोटा-सा मुँह होता है जो कठोर बालों से आवृत्त होता है। असली कस्तूरिया हरिण में से इतनी तीव्र सुगन्धि आती है कि शिकारी इसको कई फर्लाङ्ग की दूरी से पहचान जाते हैं। किसी-किसी शिकारी पर इस

सुगन्धि का बहुत दुष्प्रभाव भी पड़ता है। इस सुगन्धि का दूषित प्रभाव प्रायः स्नायुमण्डल, दृष्टि एवं श्रवण शक्ति पर पड़ता है। चीन तथा रूस के शिकारियों का मत है कि बहुत अच्छी श्रेणी की कस्तूरी पकड़े या मारे हुए हरिणों से नहीं प्राप्त होती; वरन् कस्तूरिया हरिण जहाँ उठते या बैठते हैं वहाँ बिखरी हुई मिलती है। हरिण इस तीव्र गन्ध से बेचैन होकर अपने खुरों से ग्रन्थियों को तोड़कर कस्तूरी वहीं गिरा देते हैं। ऐसी कस्तूरी प्रायः उपलब्ध नहीं होती।
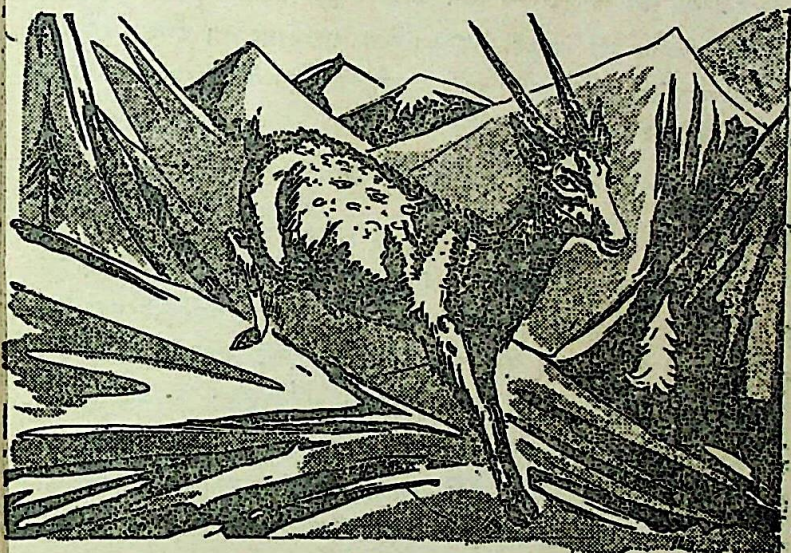
यह भी देखा गया है कि बिलकुल कस्तूरी जैसी गन्धवाला पदार्थ अन्य प्रकार की अनेक वनस्पतियों एवं जानवरों से भी प्राप्त होता है। नर-कस्तूरिया हरिण तथा मार्टन के मल में ठीक कस्तूरी जैसी ही गन्ध रहती है। एक विशेष प्रकार की बकरी के रक्त एवं कस्तूरिया साँड़ के मांस से भी ठीक कस्तूरी जैसी ही गन्ध आती है।

वनस्पतियों में कस्तूरिया घास से कस्तूरी-जैसी ही गन्ध आती है। इस घास का प्रयोग विभिन्न प्रकार के सुगन्धित तैल बनाने में होता

इसके अतिरिक्त अफ्रीका, जमैका, अमरीका तथा भारत में कई प्रकार की और भी वनस्पतियाँ हैं, जिनमें कस्तूरी-जैसी गन्ध मिलती है। यद्यपि कस्तूरी-जैसी गन्धवाले इतने पदार्थ हैं, तथापि कस्तूरिया हरिण से प्राप्त होनेवाली कस्तूरी का ही प्रयोग संसार में व्यापारिक एवं चिकित्सा की दृष्टि से किया जाता है।

आजकल के व्यापारिक जगत् में तीन प्रकार की कस्तूरी मिलती है:—

१. रूस की कस्तूरी—जिसमें कोई विशेष अकार्षक गन्ध नहीं होती।

२. आसाम की कस्तूरी—इसका रंग काला होता है। इसको आयुर्वेद में कामरूप देश की कस्तूरी कहा जाता है। इस कस्तूरी की गन्ध बहुत मादक होती है।

३. चीन की कस्तूरी—इस प्रकार की कस्तूरी सर्वोत्तम होती है। तिव्वत में भी यही मिलती है।

इतनी कीमती एवं दुष्प्राप्य होने पर भी कस्तूरी की माँग इतनी अधिक है कि इसका वास्तविक रूप में मिलना प्रायः असम्भव-सा हो गया है। सुखाया हुआ रक्त, यकृत् एवं अन्य वनस्पतियाँ इसमें मिला दी जाती हैं।

भारतीय चिकित्सक कस्तूरी का प्रयोग मृगी, बच्चों के स्नायुमण्डल-सम्बन्धी रोगों में सफलता के साथ करते हैं। इसका विशेष प्रयोग रक्त के श्वेताणुओं पर देखा गया है। इसके प्रयोग से रक्त के श्वेताणुओं की वृद्धि होती है। ये श्वेताणु ही शरीर की प्रतिशोधक शक्ति को बढ़ाकर बाह्य आक्रमण को रोकते हैं। सम्भवतः इसी कारण कस्तूरी आदि का प्रयोग प्रसूतावस्था में किया जाता है।

इसका उपयोग हृदयोत्तेजना के लिए भी होता है। जब सब औषधियाँ असफल हो जाती हैं, तब इसका अकेले अथवा मकरध्वज मिला कर प्रयोग किया जाता है। यह उत्तेजक होता है। इसका उत्तेजक प्रभाव मस्तिष्क, श्वास-प्रणाली, रक्तवाहिनी शिराओं और स्नायुमण्डल पर होता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—संगृहीत, पर्याप्त, हस्तगत, अपरिपक्व, व्यास, दुष्प्रभाव, वनस्पति, उपलब्ध, श्वेताणु, प्रसूतावस्था और प्रति-रोधक।

(२) पर्यायवाची बताइए—हरिण, कस्तूरी और बाल।

(३) विपरीतार्थक बताइए—अधिक, सुगंधि और तीव्र।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) कस्तूरीवाले नर-हरिण कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं?

(५) आजकल के व्यापारिक-जगत में कितने प्रकार की कस्तूरी मिलती है?

(६) कस्तूरी हमारे लिए क्यों उपयोगी है?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) अन्तिम अनुच्छेद का भावार्थ लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) सन्धि-विग्रह कीजिए—सर्वोत्तम, प्रसूतावस्था, दुष्प्राप्य, तथापि, श्वेताणु और दुष्प्रभाव।

(९) समास बताइए—मृगनाभि, श्रवण-शक्ति और नर-हरिण।

(१०) प्रयोग और उपयोग में अन्तर बताइए।

५—रचना-सम्बन्धी

(११) कस्तूरी की कहानी अपनी भाषा में लिखिए।

—:०:—

: १२ :

हरिजनों का उत्थान

महात्मा गान्धी

[प्रस्तुत पाठ गान्धी जी के एक प्रवचन से लिया गया है। गान्धी जी का जन्म काठियावाड़ के अन्तर्गत पोरबन्दर में २ अक्तूबर सन् १८६९ को हुआ था। गान्धीजी मानवप्रेमी थे। उन्हें किसी-जाति विशेष से प्रेम नहीं था। संसार की समस्त जातियों के प्रति उनकी उदार भावना थी। उनमें ऊँच-नीच का भाव नहीं था। वह अछूतों को 'हरिजन' कहते थे। इस पाठ में उन्होंने हमें उनके साथ अपने भाइयों जैसा व्यवहार करने का उपदेश दिया है। हमें उनके उपदेशों पर चलना चाहिए।]

सनातन-धर्म की जड़ को वही लोग उखाड़ रहे हैं जो अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का मूल मानते हैं। मैं आदरपूर्वक यह बात कहता हूँ कि इस विश्वास में न दूरंदेशी है, न विचार है, न विवेक है, न विनय है, न दया है और यदि ऐसा विचार रखनेवाला सारे संसार में मैं अकेला ही रह जाऊँ, तो भी मैं अन्त तक यही कहूँगा। आज हम अस्पृश्यता का जो अर्थ कर रहे हैं, उसे यदि हिन्दू-धर्म में स्थान देंगे तो हिन्दू धर्म क्षय रोग से ग्रसित हो जायगा और उसका परिणाम होगा उसका विनाश। बात बुद्धि के बाहर होगी, दया-धर्म के बाहर होगी और उसका समावेश यदि हिन्दू-धर्म में होगा तो उसका नाश निश्चित है। दया-धर्म का मुझे ज्ञान है और उसी के कारण मैं देख रहा हूँ कि आज हिन्दू-धर्म के नाम पर कितना पाखण्ड और अज्ञान फैल रहा है। इस पाखण्ड और अज्ञान के विरुद्ध यदि आवश्यकता आ पड़े तो मैं अकेला लड़ूँगा, अकेला रह कर तपश्चर्या करूँगा और उसका नाम जपते हुए मरूँगा। कदाचित् ऐसा भी हो कि मैं पागल हो जाऊँ और कहूँ कि अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का पाप कह कर मैंने पाप किया था, तो आप सच मानना कि मैं डर गया हूँ, सामना नहीं कर सकता और व्यग्र होकर मैं अपने विचार

बदल रहा हूं। उस दशा में आप ऐसा ही मानना कि मैं मूर्च्छित दशा में ऐसी बात बक रहा हूँ।

आज जो बात मैं आप से कह रहा हूँ, उसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, उसमें मैं कोई उपाधि नहीं लेना चाहता, उपाधि तो मैं 'भङ्गी' की चाहता हूँ। सफाई करना कितना पुण्य-कर्म है! यह काम या तो ब्राह्मण कर सकता है या भङ्गी कर सकता है। ब्राह्मण ज्ञान-पूर्वक करता है और भङ्गी अज्ञानपूर्वक। मेरे लिए दोनों पूज्य हैं, आदरणीय हैं। दोनों में से यदि एक का भी लोप हो जाय तो हिन्दू-धर्म लोप हुए बिना न रहेगा।

महात्मा गान्धी

मुझे सेवा-धर्म प्रिय है। इसी से मुझे भङ्गी प्रिय है। मैं तो भङ्गी के साथ बैठकर खाता हूँ; पर आपसे नहीं कहता कि आप कभी उसके साथ बैठकर खायें, रोटी-बेटी का व्यवहार करें। आप से कह भी किस प्रकार सकता हूँ? यह अवश्य कहूँगा कि मेरे जीवन का प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है। ऐसी अवस्था में मैं यह नहीं कह सकता हूँ कि यदि किसी भङ्गी की लड़की या कोई कोढ़ी आदमी मेरी सेवा चाहते हों, तो मैं उनकी सेवा नहीं कर सकता। मुझे अपने हाथ का खाना खिलाना चाहें तो मैं नहीं खा सकता। फिर ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचावे अथवा मार डाले, पर मैं तो कोढ़ी की सेवा किये बिना नहीं रह सकता। ऐसा करते हुए यह भी दावा करूँगा कि यदि ईश्वर की गरज हो तो मुझे रक्खे; क्योंकि मैं अपना यही कर्म समझता हूँ कि पहले भङ्गी को खिला कर तब खाऊँ। पर मैं आपसे नहीं कहता कि आप व्यवहार-धर्म की मर्यादा को तोड

डालें। आपसे तो मैं इतना ही चाहता हूँ कि आप पाँचवाँ वर्ण न बनाएं। ईश्वर ने चार वर्णों की रचना की है। इसका अर्थ मैं समझ सकता हूँ। पर आप पाँचवाँ 'अछूतों का वर्ण' न पैदा करें। मैं अछूतपन को गवारा नहीं कर सकता। इस शब्द को सुनकर मुझे चोट पहुँचती है। आप से एक प्रार्थना करता हूँ। यदि आप ऐसा समझते हों कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म
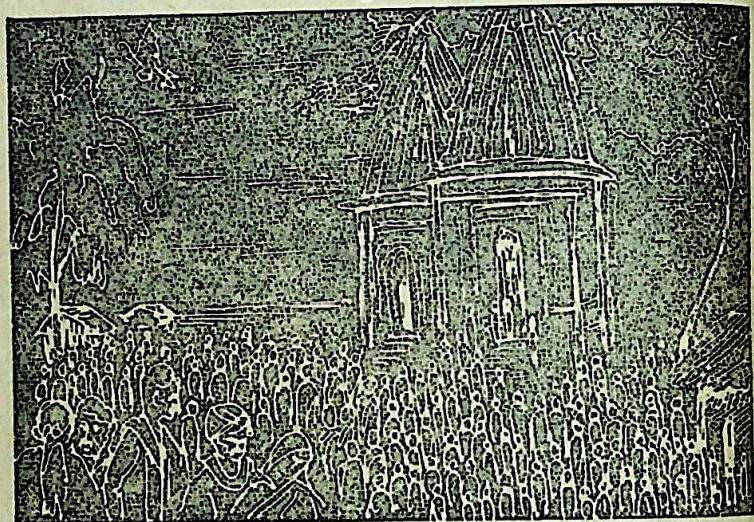
हरिजनों का मन्दिर-प्रवेश

की जड़ है, तो आप ऐसा समझते रहिए; पर आप मुझे यह भी कहने का अधिकार दीजिए कि वह हिन्दू-धर्म का पाप है। आप से हो सके तो आप हिन्दू-संसार के हृदय को जागृत कीजिये, पर मुझे भी ऐसा करने का अधिकार दीजिए। मैं आपको वचन देता हूँ कि आपके साथ प्रेम-भाव से वर्ताव करूँगा।

जो लोग आज अस्पृश्यता के विषय में मेरा साथ दे रहे हैं, उनसे और अपने हरिजन भाइयों से भी मैं कहता हूँ कि जो लोग आपको गालियाँ देते हों उनके प्रति सहनशील रहना। तुलसीदास जी कह गये हैं "दया धर्म का मूल है", सो यदि प्रेम-भाव को छोड़ोगे तो बाजी हार

जाओगे। जिस प्रकार आप अस्पृश्यता को पाप मानते हैं उसी प्रकार आप अपने विरोधियों के तिरस्कार के पाप में भी न पड़ना। जो आपको गालियाँ दें, उनसे हँस कर बोलना। सच्चे दिल से उनके साथ प्रेम करना और शुद्ध आचार-विचार रखना। ऐसा करोगे तो यह अस्पृश्यता-रूपी पाप मिट जायगा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—निश्चित, अस्पृश्यता, दूरंदेशी, पाखंड, व्यग्र, मर्यादा और उपाधि।

(२) पर्यायवाची बताइए—मूल, पाप और पूज्य।

(३) विपरीतार्थक बताइए—पाप, ज्ञान, धर्म और प्रेम।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) गांधी जी को भंगी क्यों प्रिय हैं?

(५) सनातन-धर्म से आप क्या समझते हैं?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) निम्नांकित का भाव स्पष्ट कीजिए—

रोटी-बेटी का व्यवहार, व्यवहार-धर्म की मर्यादा।

(७) अंतिम अनुच्छेद का भावार्थ लिखिए :

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) 'उखाड़ रहे हैं' किस काल की क्रिया है?

(९) 'अस्पृश्यता' शब्द की रचना स्पष्ट कीजए।

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) पाठ में आये हुए मुहावरों को छाँटकर उनमें से किन्हीं दो को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

(११) पाठ का सारांश लिखिए।

—:०:—

अमरगान

डा० मैथिलीशरण गुप्त

[डा० मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ल द्वितीया, चन्द्रवा सं० १९४३ को चिरगाँव, जिला झाँसी में हुआ था। उन्होंने घर पर हि हिन्दी-साहित्य का अध्ययन किया और बड़े होने पर कविता करने लगे। आचार्य द्विवेदी जी से इस दिशा में उन्हें विशेष प्रोत्साहन मिला। उन्होंने कई कविता-पुस्तकें लिखी हैं। उनके खण्ड-काव्य और महाकाव्य हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। वह हमारे साहित्य के राष्ट्रीय कवि माने जाते हैं। राष्ट्रीय भावनाओं के विकास में उन्हें गान्धी जी से विशेष प्रेरणा मिली है। वह राम के भक्त और अपने राष्ट्र के अनन्य प्रेमी हैं। प्रस्तुत कविता में उन्होंने अपने नवयुवकों को निर्भीकता का उपदेश दिया है उनकी भाषा सरल, ओजपूर्ण और प्रवाहमय है।]
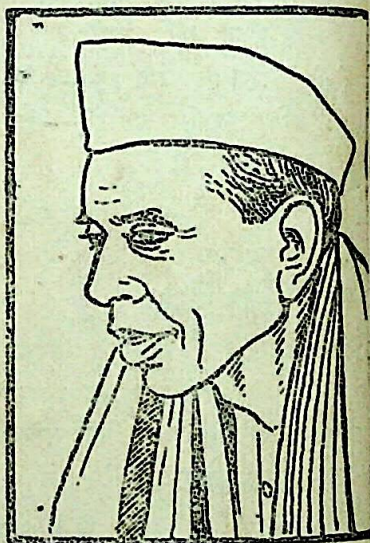
मैथिली शरण गुप्त

: १ :

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी;
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।

हुई न यों सु-मृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये;
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये ।
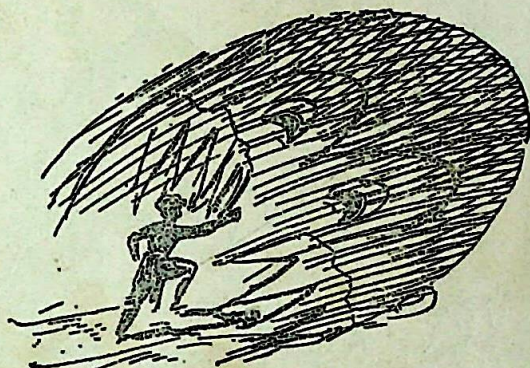
वही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

: २ :

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती;
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती ।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती ।
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

: ३ :

क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी;
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी ।
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया;
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म्म भी दिया ।

नाशवान शरीर के लिए मृत्यु

अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

महर्षि दधीचि

: ४ :

सहानुभूति चाहिये, महा विभूति है यही;
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।
विरुद्धवाद बुद्ध का दया-प्रवाह में बहा;
विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहा।

अहा! वही उदार है परोपकार जो करे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

: ५ :

रहो न भूल के कभी मदान्ध तुच्छ वित्त में;
सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में ।
अनाथ कौन है यहाँ, त्रिलोकनाथ साथ हैं;
दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं ।
अतीव भाग्यहीन है अधीर भाव जो करे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

: ६ :

अनन्त अन्तरिक्ष में अनन्त देव हैं खड़े;
समक्ष ही स्वबाहु जो बढ़ा रहे बड़े-बड़े ।
परस्परावलम्ब से उठो तथा बढ़ो सभी;
अभी अमर्त्य-अङ्क में अपङ्क हो चढ़ो सभी ।
रहो न यों कि एक से न काम और का सरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

: ७ :

"मनुष्यमात्र बन्धु हैं" यही बड़ा विवेक है;
पुराणपुरुष स्व-भू पिता प्रसिद्ध एक है ।
फलानुसार कर्म्म के अवश्य बाह्य भेद हैं;
परन्तु अन्तरैक्य में प्रमाणभूत वेद हैं ।
अनर्थ है कि बन्धु ही न बन्धु की व्यथा हरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

: ८ :

चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए;
विपत्ति-विघ्न जो पड़ें उन्हें ढकेलते हुए ।

घटे न हेलमेल हाँ, बढ़े न भिन्नता कभी;
अतर्क्य एक पन्थ के सतर्क पन्थ हों सभी ।
तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—मर्त्य, वृथा, क्षुधार्त, करस्थ, अस्थिजाल, कृता, विरुद्धवाद, मदान्ध, अन्तरिक्ष और अभीष्ट ।
(२) पर्यायवाची बताइए—सरस्वती, सृष्टि और शरीर ।
(३) विपरीतार्थक बताइए—परार्थ, मृत्यु, दया और अनाथ ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) पशु-प्रवृत्ति से कवि का क्या तात्पर्य है ?
(५) 'मनुष्य मात्र बन्धु हैं'—इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) 'परस्परावलम्ब से उठो तथा बढ़ो सभी' से कवि का क्या तात्पर्य है ?
(७) 'विरुद्धवाद बुद्ध का दया प्रवाह में बहा' की व्याख्या कीजिए ।
(८) 'अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या करे' में देह को अनित्य और जीव को अनादि क्यों कहा गया है ?

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(९) रन्तिदेव, उशीनर और दधीचि की कथा लिखिए ।

—:०:—

: १४ :

सत्यकाम की गुरुभक्ति

[इस पाठ में एक पौराणिक कथा लिखी गई है। इसमें सच्ची गुरु-भक्ति का महत्त्व दिखाया गया है। सत्यकाम स कथा का नायक है। वह विनयी, सत्यवादी, निर्भीक, आज्ञाकारी और अपने लक्ष्य का साधक है। उसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर गौतम ऋषि उसे अपने आश्रम में स्थान देते हैं। वास्तव में हमारे जीवन में गुणों का ही महत्त्व है, जाति का नहीं। कोई बालक किसी विशिष्ट जाति में उत्पन्न होने के कारण ही ऊँचा नहीं हो जाता, उसको ऊँचा बनानेवाले उसके गुण होते हैं। इस दृष्टि से यह पाठ अत्यन्त शिक्षाप्रद है।]

प्रातःकाल का समय था। गौतम ऋषि अपने आश्रम में विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे थे। इतने में एक दस वर्ष के सुन्दर तथा स्वस्थ बालक ने उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उसके हाथ में न समिधा थी और न कमर में मूँज की मेखला। मृगचर्म और जनेऊ भी उसने नहीं धारण किये थे। विद्यार्थियों से घिरे हुए गौतम का चरण-स्पर्श उसने जिस साहस से किया, उसी साहस से विनयपूर्वक उसने निवेदन किया—

"पूज्य गुरुदेव ! मैं आपके गुरुकुल में अध्ययन करने के लिए आया हूँ। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार ही चलूँगा और गुरुकुल के नियमों का विधिवत् पालन करूँगा। मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे स्वीकार करें।"

सीधे-सादे और सरल प्रकृतिवाले बालक के इन निश्छल शब्दों से गौतम का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो गया। उन्होंने प्यार भरे स्वर में पूछा—"बेटा ! तेरा नाम क्या है? तेरा गोत्र क्या है? और क्या तेरे पिताजी नहीं हैं, जो तू यहाँ अकेले ही आया है?"

विद्यार्थियों का समूह चित्रलिखे की भाँति उस बालक की ओर देखने लगा। बालक ने विनयभरी वाणी में हाथ जोड़कर कहा—"पूज्य गुरुदेव !

अभी मेरा नामकरण-संस्कार भी नहीं हुआ है और न मुझे अपने गोत्र त
पिताजी के बारे में ही ज्ञात है। अपनी माता जी से पूछ कर मैं आप
इस सम्बन्ध में बता सकता हूँ। परन्तु भगवन्! मैं आप की शरण
हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं गुरुदेव के सभी नियमों का पालन करूँगा
आप मुझे स्वीकार करें।"
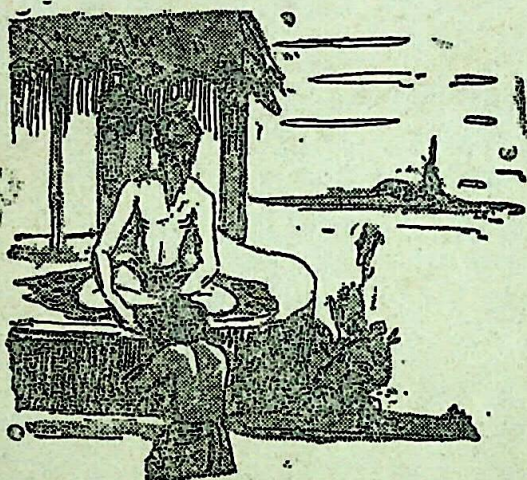
बालक के इस निर्बाध उत्तर से शिष्य-मंडली दंग रह गयी। गौत
असमंजस में पड़ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—

"बेटा! तुम जा कर अपनी माता से अपने गोत्र तथा पिता का ना
पूछ आओ। मैं तुम्हें अवश्य अपने आश्रम में प्रविष्ट करूँगा।"

बालक गौतम के चरणों पर गिर पड़ा और फिर वह चुपचाप अप
निवासस्थान की ओर लौट गया।

पाँच-छः दिन बाद वह बालक फिर आया। आते ही उसने गुरु
के चरण-स्पर्श कर समस्त छात्र-मण्डली का अभिवादन किया। गौतम
पूछा—"बेटा! क्या पूछ कर आ गये?"

बालक ने सविनय उत्तर दिया—"हाँ गुरुदेव! मैं पूछ कर आ ग
हूँ। मेरी माँ ने कहा है कि वह मेरा गोत्र नहीं बता सकतीं, और न मैं

पिता का नाम ही उसे ज्ञात है। अपनी युवावस्था में वह साधु-सन्तों की सेवा करती थीं, उन्हीं दिनों मेरा जन्म हुआ था। मेरी माँ का नाम है जबाला। यदि उसके नाम से मेरा काम बनता हो तो मुझे अपने चरणों में ले लीजिए।" इतना कहते-कहते वह गौतम के चरणों पर गिर कर सिसकियाँ भरने लगा।

गौतम के आश्रम में इस प्रकार की यह पहली घटना थी। वह उठे, और उन्होंने उस सुन्दर एवं निर्भीक बालक को उठा कर अपनी छाती से लगा लिया। इसके बाद वह बोले—"वत्स! तुम्हारी सत्यता तथा सरलता ने मुझे बाँध लिया है। तुम मेरे आश्रम में निर्भय होकर रहो। मैं तुम्हें सभी शास्त्रों की विधिवत् शिक्षा दूँगा। मैं तुम्हारी सत्यप्रियता के कारण तुम्हारा नाम 'सत्यकाम' रखता हूँ। तुम्हारी माता के नाम पर तुम्हारा नाम 'जाबाल' भी होगा।"

बालक कृतार्थ हो गया। गौतम ने अपने ही उपकरणों से सत्यकाम का उपनयन-संस्कार किया और पाँच कुलपतियों की उपस्थिति में उसे बटु का वेश प्रदान किया। धीरे-धीरे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति सत्यकाम की निष्ठा, वर्चस्व और व्यक्तित्व का मनोरम विकास होने लगा और थोड़े ही दिनों में वह गुरुकुल का सर्वप्रिय छात्र बन गया; परन्तु अब तक आचार्य ने उसकी विद्या का श्रीगणेश नहीं किया था। सत्यकाम को इसकी चिन्ता भी नहीं थी।

एक दिन आचार्य ने सत्यकाम को बुलाकर सभी छात्रों की उपस्थिति में कहा—"बेटा! मैं तुम्हें एक कठिन काम से आश्रम के बाहर भेजना चाहता हूँ। सामने चार सौ बूढ़ी मरियल गौएँ खड़ी हैं। उन्हें लेकर तुम दूर जङ्गल में चले जाओ और जब वे एक हजार हो जायँ तब लौट आओ।"

सत्यकाम निहाल हो गया। गुरुदेव को वचन देकर उसने जङ्गल की ओर प्रस्थान किया। उस समय उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं था। वह आनन्द-समुद्र की लहरों पर उछलता हुआ गौओं को हाँकते हुए इस प्रकार चला जा रहा था, जैसे सम्पूर्ण विद्या की समाप्ति कर वह अपनी माँ के पास जा रहा हो।

सत्यकाम ने उन बूढ़ी मरियल गौओं की ऐसी निष्ठा से सेवा और ऐसा पालन-पोषण किया कि वे सब जवान हो गईं और सात वर्षों के भीतर ही उनकी संख्या एक हजार तक पहुँच गई। एक दिन प्रातःकाल सत्यकाम जब सन्ध्या-वन्दन में तल्लीन था, गौओं के समूह में से एक महान् वृषभ के मुँह से उसे मानव-बोली सुनाई पड़ी। घनघोर जङ्गल के बीच वर्षों बाद मानव का प्यार-भरा स्वर सुनकर सत्यकाम का ध्यान स्थिर नहीं रह सका। उसने आँखें खोल कर जब देखा, तब वह महान् वृषभ उसके सामने खड़ा होकर कहने लगा—"आयुष्मान्! अब हमारी संख्या एक हजार हो गयी है, हमें गुरु के आश्रम में ले चलो; परन्तु आश्रम जाने के पूर्व मैं तुम्हें कुछ उपदेश भी करना चाहता हूँ; तुम मेरी ओर देखो।"

महान् वृषभ की अपूर्व एवं प्रेम-भरी मानव-वाणी से सत्यकाम के हृदय में हर्ष का समुद्र उमड़ पड़ा। वह गद्‌गद् कण्ठ से हाथ जोड़कर बोला—"मैं इसके लिए प्रस्तुत हूँ। आप उपदेश दें।"

महान् वृषभ ने सत्यकाम को सेवाव्रत का उपदेश देकर कहा—"इसके अनन्तर तुम्हें क्रमशः अग्नि, हंस और जल-कुक्कुट के द्वारा उपदेश मिलेगा और तदनन्तर तुम्हारे गुरुदेव तुम्हें लौकिक विद्याओं का दान करेंगे।"

सत्यकाम कृतार्थ हो गया। एक हजार गौओं के साथ वह अग्नि, हंस और जल-कुक्कुट के अतिरिक्त उपदेशों को प्राप्त कर जब गौतम के आश्रम में पहुँचा, तब वहाँ प्रसन्नता का पारावार न रहा। सभी छात्रों समेत आचार्य गौतम ने उसके तेजस्वी शरीर पर ब्रह्मतेज की अलौकिक आभा देखी। उसके दमकते चेहरे पर सूर्य का तेज और चन्द्रमा की कान्ति थी। उसके प्रत्येक अङ्ग से शोभा और सन्तोष का स्रोत फूट रहा था। एक हजार सुन्दर, स्वस्थ, नीरोग और दूध देनेवाली गौओं से गौतम का आश्रम स्वर्ग बन गया।

इसके पश्चात् सत्यकाम ने गुरु के चरणों में बैठ कर उन लौकिक विद्याओं को बहुत थोड़े ही समय में प्राप्त कर लिया, जिनके लिए अन्य ब्रह्मचारियों को अपनी लम्बी आयु बितानी पड़ती थी। उसकी निरभि-मानिता, पर-दुःख-कातरता, सेवा-परायणता तथा निष्ठा ने उसकी लौकिक

पारलौकिक विद्याओं को इतना चमका दिया कि गौतम के आश्रम में ही वह एक महान् पण्डित के रूप में विख्यात् हो गया और चारों ओर उसकी यश-चन्द्रिका छिटक गयी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइये—निर्बाध, विधिवत्, अभिवादन, निष्ठा, वर्चस्व, कृतार्थ, पारावार और सेवापरायणता।

(२) पर्यायवाची बताइए—माता, पिता, और चन्द्रिका।

(३) विपरीतार्थक बताइए—निर्भीक, सत्यता और सुन्दर।

२–विषय-सम्बन्धी

(४) बालक का नाम 'सत्यकाम' और 'जाबाल' क्यों रखा गया?

३–भावार्थ-सम्बन्धी

(५) अन्तिम अनुच्छेद का सन्दर्भ सहित भावार्थ लिखिए।

४–व्याकरण-सम्बन्धी

(६) निम्नाङ्कित वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिए :
गुरुदेव को वचन देकर उसने जङ्गल की ओर प्रस्थान किया।

(७) सन्धि विग्रह कीजिए :
ब्रह्मचारी, युवावस्था, निष्ठा।

५–रचना-सम्बन्धी

(८) सत्यकाम की कथा अपने शब्दों में लिखिए।

(९) अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए :—
मरियल, पारावार नहीं था, आँखें खोल कर देखना।

—:o:—

: १५ :

मुद्राराक्षस की कथा

[मुद्राराक्षस की कथा इतिहास-प्रसिद्ध कथा है। महाकवि विशाखद ने इसी नाम से एक नाटक लिखा है। उसी नाटक के आधार पर यह कथा लि गयी है। कथा बहुत रोचक और शिक्षाप्रद है। इसमें चाणक्य चरित्र बहुत ही सुन्दर है। चन्द्रगुप्त के लिए उसका त्याग आदर्श

है। उसका एक ध्येय है और वह उसी की सफलता के लिए बरा प्रयत्न करता है। ध्येय की सिद्धि ही सच्ची उपासना है और अपने ध्येय में सफल होता है, जो उसके लिए सतत साधन करता है। इस दृष्टि से इस कहानी का हमारे लिये विशेष महत्त्व है।]

प्राचीन काल में मगध नाम का एक प्रसिद्ध राज्य था। पहले वहाँ पुरु-वंशी राजा जरासन्ध राज करते थे। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी, जिसे आजकल पटना कहते हैं। उनके वंश का अन्त होने पर नन्दवंश का अभ्युदय हुआ। नन्दवंश के प्रसिद्ध राजा का नाम महानन्द था। वह बहुत प्रतिभाशाली राजा थे। उनके दो मन्त्री थे—शकटार और राक्षस। शकटार प्रधानमन्त्री था। वह था तो जाति का शूद्र, पर अपने कार-बार में अत्यन्त नीति-निपुण था। राक्षस ब्राह्मण था और वह भी अपने काम में बहुत चतुर था।

शकटार को अपने पद और प्रतिष्ठा का बहुत अभिमान था। कभी-कभी महाराज नन्द से भी उसकी खटक जाया करती थी। एक दिन ऐसा ही हुआ और महाराज नें उससे रुष्ट होकर उसे सपरिवार कारावास में डाल दिया। कारावास में सबके लिए केवल दो सेर सत्तू दिया जाता था। दो सेर सत्तू और शकटार का सम्पूर्ण परिवार! कोई भी पेट भर नहीं खा पाता था। इससे सबको महान् कष्ट था। धीरे-धीरे उसके परिवार के लोग मरते जा रहे थे। सन्तोष की भी सीमा होती है। अपने परिवार के लोगों की अकाल-मृत्यु से वह पागल-सा हो गया और महाराज से बदला लेने की युक्ति सोचने लगा।

संयोगवश एक दिन महाराज नन्द हँसते हुए अपने अन्तःपुर में जा रहे थे। उन्हें हँसता देखकर उनकी मुँहलगी दासी विचक्षणा भी हँसने लगी। उसका हँसना महाराज को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उससे उसके हँसने का कारण पूछा। कारण वह क्या बताती? वह तो महाराज को हँसते देखकर ही हँस पड़ी थी। वह चुप रही। महाराज ने उसके हँसने का वास्तविक कारण जानने का पुनः आग्रह किया। उसने कहा जिस बात पर महाराज हँसे, उसी बात पर मैं भी हँसी। तब महाराज ने कहा कि मैं किस बात पर हँसा—यह बता, अन्यथा तुझे मृत्यु-दण्ड मिलेगा। इस पर उसने महाराज से एक मास का अवसर माँगा। महाराज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह बात तो यहीं समाप्त हो गयी, पर इसका परिणाम बहुत भयङ्कर सिद्ध हुआ। महाराज की हँसी का रहस्य जानने के लिए

विचक्षणा एक दिन शकटार के पास पहुँची। शकटार तो ऐसे अवसर की ताक में ही था। उसने उसे महाराज की हँसी का रहस्य बता दिया।

दिन जाते देर नहीं लगती। धीरे-धीरे एक महीना समाप्त हो गया। महाराज को विचक्षणा की याद आयी। उन्होंने उसे बुलाकर अपने प्रश्न का उत्तर पूछा। उसने उनको हँसी का रहस्य बता दिया। उसकी बातें सुनकर महाराज के मस्तक पर पसीना आ गया। एक दासी और उसकी इतनी तीव्र बुद्धि ! उन्हें विश्वास नहीं हुआ। अन्त में उनके पूछने पर दासी ने उन्हें शकटार का नाम बता दिया। शकटार का नाम सुनते ही महाराज चौंक पड़े। उन्हें अपनी न्याय-बुद्धि पर बहुत दुःख हुआ और उन्होंने उसी दिन शकटार को कारावास से मुक्त कर उसे अपना मन्त्री बना लिया। पर इससे उसके हृदय की आग नहीं बुझी। वह महाराज के विनाश की ही बातें सोचता रहा।

प्रातःकाल का समय था। शकटार वायु-सेवन के लिए एक निर्जन स्थान में टहल रहा था। टहलते-टहलते उसने एक काले ब्राह्मण को पसीने में लथपथ देखा। उस ब्राह्मण का नाम था चाणक्य। चाणक्य बहुत ही क्रोधी और उग्र स्वभाव का ब्राह्मण था। उस दिन वह कुशों की जड़ उखाड़-उखाड़ कर उसमें मठा डाल रहा था। मठा डालने से कुश समूल नष्ट हो जाते हैं। कुशों की नोकों ने उसके नङ्गे पैरों को घायल कर दिया था। इसलिए वह उनका विनाश चाहता था। शकटार को ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी। वह अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने चाणक्य को अपना अनन्य मित्र बना लिया। चाणक्य शकटार के यहाँ रहने लगा।

एक दिन महाराज नन्द के यहाँ पितृ-श्राद्ध था। बहुत से ब्राह्मण आमन्त्रित थे। शकटार चाणक्य को भी वहाँ ले गया और एक ऊँचे

आसन पर उसे बिठा कर बाहर चला गया। उस समय महाराज वहाँ नहीं थे। थोड़ी देर में जब वह आये तब आमन्त्रित पण्डितों के बीच एक काले-कलूटे ब्राह्मण को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वह उस पर टूट पड़े और उसे सभा से बाहर निकाल दिया। उसे यह अपमान सहन नहीं हुआ। उसने उसी क्षण अपनी शिखा खोली और नन्द-वंश के नाश की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार शकटार की युक्ति सफल हो गयी।

महाराज नन्द की दो रानियाँ थीं। उनमें से बड़ी थी शूद्रा। उसका नाम था मुरा। चन्द्रगुप्त उसी का पुत्र था। वह बहुत प्रतिभाशाली था। दूसरी रानी के आठ पुत्र थे, परन्तु वे सब के सब निकम्मे थे। सबसे बड़ा होने के कारण चन्द्रगुप्त ही राज्याधिकारी था, इसलिए उससे सब जलते थे। महाराज की भी उस पर विशेष कृपा नहीं थी। ऐसी दशा में शकटार ने उसे अपनी ओर मिला लिया। इसके पश्चात् चाणक्य ने विचक्षणा द्वारा महाराज तथा उनके आठ पुत्रों को विष मिले हुए लड्डू खिला कर उनके जीवन का अन्त कर दिया। इस प्रकार शकटार की प्रतिशोध की भावना तो शान्त हो गयी, पर इस दुर्घटना से उसे ऐसी चोट लगी कि उसने एक वन में जाकर आत्म-हत्या कर ली। अब केवल रह गया चाणक्य और उसका सामना करनेवाला प्रधान मन्त्री राक्षस।

चाणक्य संस्कृत का असाधारण पण्डित था। उसके पिता का नाम था चणक, इसलिए उसे लोग चाणक्य कहते थे। वह महान् कूटनीतिज्ञ और राजनीतिज्ञ था। कूटनीतिज्ञ होने के कारण ही वह कौटिल्य के नाम से भी प्रसिद्ध था। उसका वास्तविक नाम था विष्णुगुप्त। नन्द की हत्या के पश्चात् उसने चन्द्रगुप्त को राजा बनाना चाहा, परन्तु अपने इस उद्देश्य में उसे सफलता नहीं मिली। राक्षस अब भी प्रधान मन्त्री था। उसने महानन्द के भाई सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाया। यह देख कर चाणक्य अफगानिस्तान गया और वहाँ के राजा पर्वतक को अपनी ओर मिला कर मगध पर आक्रमण करा दिया। घोर युद्ध के पश्चात् मगध की सेना हार गयी। चाणक्य के हाथ में शासन-सूत्र आ गया। उसने षड्यन्त्र रच कर सर्वार्थसिद्धि को वैराग्य लेने पर विवश किया और जब वह

अपना राजपाट छोड़ कर वन में चला गया, तब वहाँ वह मौत के घाट उतार दिया गया। इससे चन्द्रगुप्त के मार्ग का काँटा निकल गया। सारा शासन-सूत्र चाणक्य के हाथ में आ गया और उसने चन्द्रगुप्त को राजा बना दिया।

चाणक्य ने अब तक जो कुछ किया था, उसमें उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं था। यही उसके चरित्र की विशेषता थी। चन्द्रगुप्त को राजा बनाने के पश्चात् वह राक्षस को उसका महामन्त्री बनाने के लिए प्रयत्न करने लगा। उस समय राक्षस अपने परिवार को चन्दनदास जौहरी के पास छोड़ कर वन में रहता था। चाणक्य ने उसे महामन्त्री बनाना चाहा, परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। नन्दवंश के पराभव से वह बहुत ही दुखी था। उसने पर्वतक को अपनी ओर मिला लिया और चन्द्रगुप्त को मारने के उपाय सोचने लगा। चाणक्य दूरदर्शी था। वह राक्षस का कुचक्र ताड़ गया। इसका फल यह हुआ कि पर्वतक भी मारा गया और उसका पुत्र मलयकेतु अपने अधिकारियों के साथ भाग गया। उसके राज्य पर चाणक्य का अधिकार हो गया। चाणक्य अपने प्रयत्न में बराबर सतर्क रहता था। उसने चारों ओर गुप्तचरों का जाल-सा बिछा रखा था। उसके गुप्तचर भी एक-दूसरे का भेद नहीं जान पाते थे। यही उसकी सफलता का रहस्य था। वह राजधानी से बाहर एक पर्णशाला में रहता था। एक दिन उसके पास एक दूत आया। उस दूत ने उसे एक मुद्रिका दी। यह राजकीय मुद्रिका थी। मुद्रिका पाकर चाणक्य बहुत प्रसन्न हुआ। राक्षस को पराजित करने का यह उत्तम साधन था। इसकी सहायता से चाणक्य ने ऐसी-ऐसी चालें चलीं कि राक्षस को अपने किसी भी प्रयत्न में सफलता नहीं मिली। उसने उसके मित्र चन्दनदास को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी और मलयकेतु को पकड़वा कर बन्दी बना लिया।

राक्षस को चन्दनदास और मलयकेतु से बहुत प्रेम था। चन्दनदास ने उसके परिवार की रक्षा की थी और मलयकेतु ने चन्द्रगुप्त के विरुद्ध

उसकी पूरी सहायता की थी । इन दोनों व्यक्तियों के उपकार का उसके हृदय पर भारी बोझ था, इसलिए वह अपनी जान देकर भी उनकी रक्षा करना चाहता था । चन्दनदास को फाँसी देने का दिन ज्यों-ज्यों निकट आता जा रहा था, त्यों-त्यों उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी । अन्त में वह पाटलिपुत्र चला आया और वहाँ के एक उपवन में रहने लगा ।

प्रातःकाल का समय था । राक्षस उपवन की एक जीर्ण-शीर्ण कुटी में नतमस्तक बैठा हुआ कुछ सोच रहा था । सहसा उसका ध्यान भङ्ग हो गया । उसने अपनी गर्दन ऊपर उठाई और देखा कि एक व्यक्ति हाथ में फाँसी लिये हुए चला जा रहा है । उसे देखते ही उसका कलेजा धक-धक करने लगा । उसे चन्दनदास की याद आयी और जब उस व्यक्ति से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसे चन्दनदास के कारण ही आत्म-हत्या करनी पड़ रही है, तब तो वह और भी विह्वल हो उठा । उसने उसे सान्त्वना दी और कहा कि मैं अपने प्राण देकर भी चन्दनदास की रक्षा करूँगा । इतना कह कर वह निहत्था ही आगे बढ़ा और तुरन्त वध-स्थान पर पहुँच गया ।

चाण्डाल चन्दनदास को शूली पर चढ़ाने के लिए वध-स्थान की ओर ले जा रहे थे । उसके परिवार के सभी लोग उसके साथ थे और फूट-फूट कर ो रहे थे । इतने में राक्षस भी वहाँ पहुँच गया । चाणक्य यही चाहता था । उसे वहाँ देखकर वह भी वहाँ पहुँच गया । उसने राक्षस को प्रणाम किया और उससे चन्द्रगुप्त का महामन्त्री होने की प्रार्थना की । इसी अवसर पर चन्द्रगुप्त भी वहाँ आ गये । राक्षस असमञ्जस में पड़ गया । अन्त में अपने मित्र चन्दनदास की प्राण-रक्षा के लिए उसने चाणक्य की बात मान ली । वह महामन्त्री हो गया । उसकी आज्ञा से मलयकेतु मुक्त कर दिया गया और चन्द्रगुप्त ने उसका राज्य उसे लौटा दिया । चाणक्य के सङ्केत पर चन्दनदास जगत-से बना दिया गया । इस प्रकार चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हो गयी । उसने अपनी शिखा पर हाथ फेरा और उसका बन्धन किया ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—अन्तःपुर, अभ्युदय, नीति-निपुण, अकाल-मृत्यु, कारावास, श्राद्ध, कूटनीतिज्ञ और जीर्ण-शीर्ण।

(२) पर्यायवाची बताइए—सफलता, पुत्र और कारा।

(३) विपरीतार्थक बताइए—न्याय, विनाश, प्रसन्न और सफल।

२ विषय-सम्बन्धी

(४) शकटार, राक्षस और चाणक्य कौन थे ?

(५) शकटार के जीवन का किस प्रकार अन्त हुआ ?

(६) चन्द्रगुप्त कौन था ?

(७) चाणक्य ने क्या प्रतिज्ञा की थी ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(८) अन्तिम अनुच्छेद का भावार्थ लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(९) विशेषण बनाइए—वास्तव, शासन और बुद्धि।

(१०) 'आमन्त्रित' व्याकरण से किस प्रकार का शब्द है ?

५—रचना-सम्बन्धी

(११) चाणक्य का जीवन-परिचय लिखिए।

—:०:—

: १६ :

चींटी को देखो

सुमित्रानन्दन पन्त

[श्री सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म अलमोड़ा जिला के कौसानी ग्राम में सं० १९५७ में हुआ था। आरम्भ में उन्होंने अपने गाँव की पाठशाला में ही शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् काशी के जयनारायण हाई स्कूल से उन्होंने स्कूल लीविंग की परीक्षा पास कर प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालेज में अपना नाम लिखाया। यहीं से उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ हुआ। उन्होंने साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया और कविता करने लगे। उन्होंने कई कविता-पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी-साहित्य में उनकी कविता-पुस्तकों का अधिक सम्मान है। प्रस्तुत कविता में उन्होंने चींटी के जीवन को अत्यन्त सुन्दर भाषा में व्यंजित किया है। उनकी भाषा सरस और मधुर होती है और उसमें सजीवता का पुट रहता है।]
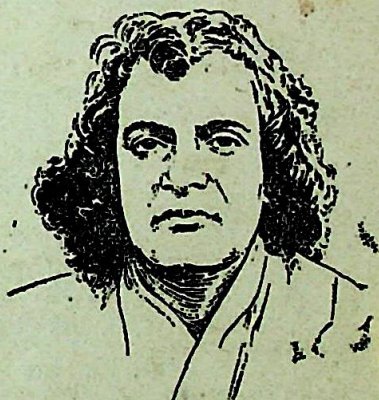
चींटी को देखो!
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे-सी जो हिल-डुल
चलती लघुपद पल-पल मिल-जुल

वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति,
काम करती वह सतत ?
कन-कन कर के चुनती अविरत !
गाय चराती,
धूप खिलाती,
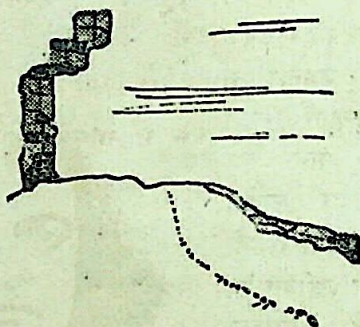
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना सँवारती,
घर, आँगन, जनपथ बुहारती !
देखो वह वल्मीक सुघर,
उसके भीतर है दुर्ग, नगर !
अद्‌भुत उसकी निर्माण-कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला !
उसमें हैं सौध, धाम, जनपथ,
आँगन, गो-गृह, भण्डार अकथ;

हैं डिम्ब-सद्म, वर शिविर रचित,
ड्योढ़ी बहु, राजमार्ग विस्तृत।
चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक !
देखो चींटी को !
उसके जी को !
भूरे बालों की-सी कतरन,
छिपा नहीं उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती, श्रम में तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय !
वह भी क्या देही है, तिल-सी ?
प्राणों की रिलमिल-झिलमिल-सी ?
दिन भर में वह मीलों चलती,
अथक, कार्य से कभी न टलती,
वह भी क्या शरीर से रहती ?
वह कण, अणु, परमाणु ?
चिर सक्रिय वह, नहीं स्थाणु !
मानव को आदर्श चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए;
बाह्य विधान उसे हैं बन्धन
यदि न साम्य उनमें अन्तरतम–
मूल्य न उनका चींटी के सम
वे हैं जड़, चींटी है चेतन !

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—अविरल, पिपीलिका, अविरत, शिल्पी, विस्तृ श्रमजीवी, सक्रिय और आत्मोत्कर्ष ।
(२) पर्यायवाची बताइए—घर, गाय और पथ ।
(३) विपरीतार्थक बताइए—बाह्य, सक्रिय और साम्य ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) कवि ने चींटी को शिल्पी क्यों कहा है ?
(५) चींटी के किन-किन गुणों पर कवि ने प्रकाश डाला है ?
(६) चींटी के जीवन से आपको क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) चींटी को कवि ने किन-किन वस्तुओं से उपमा दी है ?
(८) 'वह जीवन की चिनगी अक्षय'—का भाव स्पष्ट कीजिए
(९) 'वे हैं जड़ चींटी है चेतन' अपने शब्दों में इस कथन को पु कीजिए ।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(१०) 'चींटी का जीवन' पर एक निबन्ध लिखिए ।

—:०:—

: १७ :

एवरेस्ट-विजय

[प्रस्तुत पाठ में उन वीरों की साहसपूर्ण यात्राओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिन्होंने हिमालय की चोटी को स्पर्श करने की चेष्टा की है। अभी हाल में तेनसिंह अपनी इस चेष्टा में सफल हुए हैं। इसलिए विश्व के पर्वतारोहियों में उनका प्रमुख स्थान है। उन्होंने जो काम किया है वह उनके अध्यवसाय, उनकी लगन और उनके साहस का द्योतक है। सीलिए समस्त संसार ने उनका अभिवादन किया है।]

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत संसार का सबसे बड़ा पर्वत है। इसकी ऊँची चोटी 'एवरेस्ट' संसार की सबसे ऊँची चोटी है। यह चोटी नेपाल-तिब्बत-सीमा पर स्थित है। इसकी ऊँचाई २९,१४१ फुट अर्थात् लगभग साढ़े पाँच मील है। यह सदा बर्फ से ढकी रहती है। इसका दृश्य देखने के लिए कई पर्वतारोही प्रयत्न कर चुके हैं।

पर्वतारोही अपने को सभी आवश्यक वस्तुओं से लैस कर पर्वतारोहण करते हैं। उनके पास बर्फ काटने की विशेष प्रकार की कुल्हाड़ी, बर्फ पर न फिसलनेवाले ऐसे जूते जिनके तलों में कीलें लगी होती हैं; विशेष प्रकार के सोने और पहनने के वस्त्र; विशेष प्रकार की टोपी, बर्फ की चकाचौंध से आँखों की रक्षा करनेवाले विशेष प्रकार के चश्मे; ऊपर चढ़ने के लिए नैलन की बनी रस्सियाँ और रात में सोने तथा भयङ्कर बर्फीली आँधियों से रक्षा करने के लिए विशेष प्रकार के खेमे होते हैं।

अधिक ऊँचाई तक चढ़नेवालों को एक विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ज्यों-ज्यों वे ऊपर चढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों हवा में ऑक्सीजन की कमी होने लगती है। इस कमी को पूरा करने के लिए वेश्नामिम्गो ने 'ऑक्सीजन अप्रेटस' नाम का एक यन्त्र तैयार किया है। इसमें ऑक्सीजन भरी रहती है और आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग में लायी जा सकती है।

एवरेस्ट शिखर पर चढ़ने के लिए अनेक प्रयत्न किये जा चुके हैं सर्वप्रथम सन् १६२१ ई० में जाँच-पड़ताल के विचार से एवरेस्ट शिख पर चढ़ने की छान-बीन की गयी। इसके पश्चात् उस पर चढ़ने के लि १६२२ में दूसरी वार प्रयत्न किया गया। इसका दृश्य देखने के लि कई पर्वतारोही प्रयत्न करते रहे। सन् १६२४ में मैलौरी और इर्वाइ २८,२३० फुट की ऊँचाई तक पहुँच चुके थे; परन्तु वे अपनी राम-कहान सुनाने के लिए वहाँ से लौट कर न आ सके।
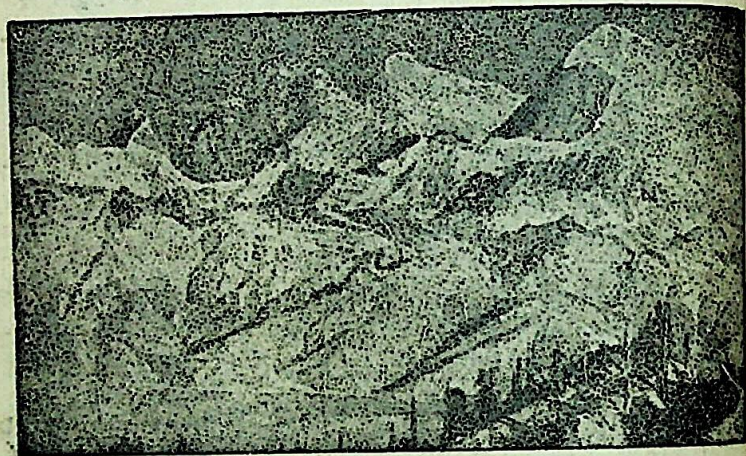
सन् १६३५ के पहले एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए जितने भी प्रयत्न किये गये, वे उत्तर दिशा की ओर से थे; और लगभग २८,००० फुट ऊँचाई तक ही सीमित रहे। इसके पश्चात् एक पीले रङ्ग की घाटी बड़ी विषम समस्या उत्पन्न कर दी। मार्ग बड़ा ढालुआँ था और उस फिसलन थी। वह एक ओर काली घाटी से जाकर मिलता था जो भी भयङ्कर और विकट था। इसके अतिरिक्त वहाँ सदा बर्फीली आँधि चला करती थीं और मौसम इतना खराब रहता था कि वहाँ मार्ग खोजन मृत्यु को निमन्त्रण देना था।

पश्चिमी और दक्षिणी मार्ग, जिससे सन् १६५२ और १६५३ के स्वि और ब्रिटिश पर्वतारोही गये, एक बर्फीली घाटी है। इसमें बर्फीली आँधि

से रक्षा हो सकती है और अधिक देर तक सूर्य की किरणें रहती हैं। तेनसिंह ने इसी मार्ग से एवरेस्ट पर विजय प्राप्त की है। सन् १९५२ से पहले भी वह अनेक बार पर्वतों पर चढ़ चुके हैं। सन् १९५२ में स्विस पर्वतारोहियों के साथ वह बिना ऑक्सीजन के लगभग २८,२१० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गये थे। दुर्भाग्यवश उनका यह प्रयत्न भी सफल न हो सका; क्योंकि मौसम खराब था। सन् १९५३ में कर्नल हंट के नेतृत्व में एक दल एवरेस्ट-शिखर पर चढ़ने के लिए गया। इस दल के सदस्यों में से तेनसिंह और हिलैरी प्रमुख थे। तेनसिंह भारत के दार्जिलिङ्ग प्रान्त के ुंगसुंग गाँव के और श्री हिलैरी न्यूज़ीलैण्ड के निवासी हैं। इन दोनों वीरों ने चोटी पर पहुँच कर यूनाइटेड नेशन्स, भारत, नेपाल और ब्रिटेन की राष्ट्र-पताकाएँ वहाँ फहराईं। वहाँ का दृश्य विशेष मोहक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु दृष्टि से बहुत नीची आ जाती है। ऐसी स्थिति में बर्फ से ढके पर्वत-शिखरों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता।

तेनसिंह का पूरा नाम तेनसिंह नोरके है। उनकी अवस्था इस समय ४० वर्ष से अधिक है। उन्हें बचपन से ही पर्वतों तथा बर्फ से बड़ा प्रेम था। उनको ऐसा मालूम होता था, मानो एवरेस्ट-शिखर मुस्करा कर उन्हें बुला रहा हो।

बड़े होने पर तेनसिंह एक ऐसे पर्वतारोही जत्थे के साथ मिल गये, जो सिक्किम की एक चोटी पर चढ़नेवाला था। उन्हों ने सन् १९३८ तक एक कुली का कार्य किया और इसी बीच उन्होंने अपना विवाह भी कर लिया। पर्वतों पर चढ़ने का क्रम कु समय तक चलता रहा। इस दिशा में उन्होंने दृढ़ता और लगन से कार्य किया और धीरे-धीरे वह एक अच्छे पर्वत-पथ-प्रदर्शक बन गये। उन्होंने पहाड़ों पर चढ़ने की सभी नवीन क्रियाएँ सीख लीं और सभी पहाड़ी मार्गों से परिचित हो ग े। यह उनके जीवन का एक सुन्दर काल था।

आरम्भ में एक बार वह ब्रिटेन के विख्यात पर्वतारोही एरिक शिप्टन के साथ २४,००० फुट की ऊँचाई तक चढ़ चुके थे। इसके पश्चात् टिलमैन के साथ २७,००० फुट की ऊँचाई तक एवरेस्ट की दिशा में चढ़ गये। उसी वर्ष वह चितराल भी गये और 'चिन्नपिट' पर चढ़े। ५ वर्ष वहाँ रहने के उपरान्त वह फिर दार्जिलिङ्ग लौट आये।

१६३७ ई० में तेनसिंह स्विस-पर्वतारोहियों के साथ गये। सन् १६३८ में वह एक इटली के प्रोफेसर और दूसरे वर्ष 'दून' स्कूल के क्रिपसिंग के साथ गये। सन् १६५० में वह टिलमैन के साथ नैपाल गये और 'लांगछाप' पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सके। उन्हें चोटी से १,००० फुट इसी ओर रह जाना पड़ा। इसके पश्चात् ७वीं गोरखा राइफल के कैप्टन रांगल और गणेश के साथ वह फिर गये। दुर्भाग्यवश उनके दोनों साथी मार्ग में ही मर गये। इसके पश्चात् वह नागा पर्वत पर चढ़े।

तेनसिंह के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना सन् १६५२ में स्विस-पर्वतारोहियों के साथ एवरेस्ट-शिखर पर चढ़ने की थी। अपने इस प्रयत्न में वह रेमंड लंबर्ट के साथ २८,२१० फुट की ऊँचाई तक बिना ऑक्सीजन की सहायता से पहुँच गये थे। इसके पश्चात् ही सन् १६५३ में उन्हें सफलता मिली।

तेनसिंह बड़े विनीत और प्रसन्न मुखाकृति के सुन्दर युवक हैं। उनके परिवार में उनकी पत्नी, उनकी दो कन्याएँ और उनका नेपाली कुत्ता खानगार है, जिसे वह बहुत प्यार करते हैं।

भारतीय सरकार ने तेनसिंह को उनकी सफलता के लिए विशेष पदक प्रदान किया है और उन्हें पुरस्कार दिया है। अपने साहस से उन्होंने भारत का मस्तक ऊँचा उठाया है और प्रत्येक राष्ट्र ने उनकी विजय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। वह हमारे देश के रत्न हैं और उन पर हमें गर्व है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—दृश्य, पर्वतारोही, दुर्भाग्यवश, पथ-प्रदर्शक और मुखाकृति।

(२) विपरीतार्थक बताइए---ऊँचाई, विजय, आरम्भ और पश्चात्।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) तेनसिंह से पूर्व एवरेस्ट-विजय के लिए जो प्रयत्न किये गये उनका वर्णन कीजिए।

(४) पर्वतारोहियों में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है ?

(५) पर्वतारोहियों को किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होती है ?

(६) तेनसिंह का जीवन-परिचय बताइए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) अन्तिम अनुच्छेद का भावार्थ लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) कैसी संज्ञाएँ हैं---नेतृत्व, फिसलन, पर्वतारोहण, वासी और घाटी।

(९) 'मुस्करा कर' कैसी क्रिया है ?

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) एवरेस्ट-विजय पर एक निबन्ध लिखिए।

(११) तेनसिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए।

—:०:—

रूस के किसान

[रूस एक प्रगतिशील कृषि-प्रधान देश है। वहाँ के किसानों ने थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक उन्नति की है। इसलिए उनका जीवन कैसा है—यह हमें जानना चाहिए। प्रस्तुत पाठ का यही उद्देश्य है। इससे हमारे देश के किसान शिक्षा ले सकते हैं।]

एक रूसी किसान सर्दियों की वेश-भूषा में

हमारे देश की तरह रूस भी एक खेतिहर देश है; परन्तु हमारे देश की तरह वह गर्म देश नहीं है। वह कनाडा की तरह ही एक ठंढा तथा लम्बा चौड़ा देश है। उसके बहुत से भाग इतने ठंडे हैं कि उनमें खेती हो ही नहीं सकती। जो भाग उसके दक्षिण की ओर हैं, उन्हीं में खेती होती है। वे कुछ गर्म हैं और उनमें अनाज पक सकता

है। जाड़े के दिनों में वहाँ की भूमि बर्फ से ढकी रहती है। गर्मी की ऋतु के आरम्भ होने पर वहाँ भी बर्फ गलती है। उस समय खेतों में गेहूँ, जौ इत्यादि की फसलें दिखाई पड़ती हैं।

जाड़े के दिनों में रूस में इतनी अधिक ठण्ढक पड़ती है कि साधारण ऊनी कपड़े पहनने से काम नहीं चलता। उन दिनों वहाँ के किसान लोग भी ऊन लगी हुई खाल के कपड़े पहनते हैं। इस खाल को 'समूर' कहते हैं। यह वहाँ के नुकीली पत्तियोंवाले वृक्षों के जङ्गलों में रहनेवाले जानवरों पर पायी जाती है। लोग जानवरों का शिकार करते हैं और समूर को उतार लेते हैं। इसी को लोग सी कर पहना करते हैं।

भेड़ों का एक चरागाह

जाड़े में वहाँ के किसानों के लिए खेतों में कोई काम नहीं रहता। उन दिनों वे अपने जानवरों को चारा खिलाते और ईंधन जमा करते हैं। ऊन हासिल करने के लिए भेड़ें पालते ह। कहीं-कहीं वे खिलौने वनाने का काम करते हैं। वे मेज, कुर्सी इत्यादि भी बना लेते हैं।

स्त्रियाँ कसीदा काढ़ती हैं। लड़के और लड़कियाँ उन दिनों घर से बा
बहुत कम निकलते हैं। ठण्ढक के कारण उन दिनों नाक-कान
आँख पर बर्फ जम जाने का डर रहता है। जब किसी की आँख
बर्फ जम जाती है, तो उसे बहुत कष्ट होता है, और वह चिल्लाता हु
किसी के घर में घुस जाता है। वहाँ उसे कुछ गर्मी मिलती है। इ
उसकी आँखें ठीक हो जाती हैं।

किसान लोग अपने घर प्रायः लकड़ी के लट्ठों के बनाते हैं। लक
उनके देश में बहुत होती है। मकानों में रात को बिजली का प्रक
होता है। उनमें रेडियो भी होते हैं। इनसे वे नित्य देश-विदेश
समाचार जान सकते हैं। जाड़े में कमरों को गर्म करने की भी सुवि
होती है। कहीं-कहीं छोटे-से कमरे में कई-कई आदमी रहते हैं। ऐ
करने से भी कमरा कुछ गर्म रहता है।

रोटी, मांस तथा करमकल्ला उनका मुख्य भोजन होता है। वे च
भी पीते हैं। उनके यहाँ एक प्रकार का काला जौ (राई) पैदा होता है
उसके आटे की रोटी वे बहुत पसन्द करते हैं।

कनाडा की तरह रूस के किसान भी मशीनों की सहायता से खे
करते हैं। उनके यहाँ खेत जोतने, बोने, काटने तथा माड़ने की मशी
होती हैं। आलू
और घास काटने
काम भी मशीनों
होता है। कभी-क
खेतों में खड़ी हुई फस
में कीड़े लग जाते हैं
इनको मारने के लि
उनके पास हवाई-जह
होते हैं। उनसे

मशीनों द्वारा सामूहिक खेती

फसलों पर दवाइयाँ छिड़क देते हैं, जिससे कीड़े मर जाते हैं।

रूस के दक्षिणी भागों में जनवरी के अन्त में बर्फ का पिघलना आर
होता है। मध्य तथा उत्तरी भागों में वह अप्रैल तथा मई तक पिघल

रहती है। जब बर्फ पिघल चुकती है, तब लगभग एक साल के लिए दृश्य विचित्र-सा हो जाता है। पेड़ कुछ-कुछ काले पड़ जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उनमें जान नहीं है; परन्तु कुछ समय पश्चात् उनमें पत्तियाँ निकलने लगती हैं। खेतों में जो बीज जाड़े के आरम्भ में बो दिये जाते हैं, वे भी उगने लगते हैं। खेतों, चरागाहों तथा जङ्गलों का दृश्य हरा हो जाता है। जुलाई और अगस्त में फसल पक कर तैयार हो जाती है और काट ली जाती है।

रूस के किसान बड़े धैर्य्यवान् और बड़े सन्तोषी भी होते हैं। वे सबको समान समझते हैं। छोटाई-बड़ाई का विचार नहीं किया जाता। उनका स्वभाव मिल-जुल कर काम करने का है। यदि उन्हें अलग-अलग कोई काम करने को दिया जाय, तो वे उसे कठिनाई से कर पाते हैं। समय भी वे अधिक लेते हैं। परन्तु एक साथ मिलकर वे काम को आसानी से कर लेते हैं। हमारे देश के किसान अपना-अपना काम अलग-अलग करते हैं और अपने परिश्रम का लाभ और हानि स्वयं उठाते हैं। उनकी प्रत्येक चीज अपनी होती है; परन्तु रूस के किसानों में ऐसा नहीं होता। वे सब मिल-जुल कर काम करते हैं और सम्मिलित रूप से परिश्रम का फल भोगते हैं।

रूस के किसानों में पञ्चायत की प्रथा है। लोग एक मुखिया चुन लेते हैं। कुछ लोग उसके सहायक बन जाते हैं। इस प्रकार उनकी सभा या पञ्चायत बन जाती है। यह गाँव के लोगों को उचित सलाह दिया करती है। गाँव के लोग इस सभा की सलाह पर कार्य किया करते हैं। इसीलिए उन लोगों का स्वभाव मिल-जुल कर काम करने का हो गया है।

पहले रूस के किसानों में शिक्षा का प्रचार कम था; परन्तु अब वहाँ की सरकार ने उनको पढ़ाने का अच्छा प्रबन्ध किया है। वहाँ 'मास्को' नाम का एक बड़ा नगर है। इसमें किसानों की शिक्षा के लिए एक बहुत बड़ी संस्था खोली गयी है। इस संस्था को 'सेंट्रल पीजेंटरी होम' अर्थात् केन्द्रीय कृषक-गृह कहते हैं। इसके भवन में लगभग साढ़े तीन सौ किसान रह सकते हैं। किसानों को शिक्षित बनाने के लिए यहाँ आवश्यकता की सभी चीजें रखी
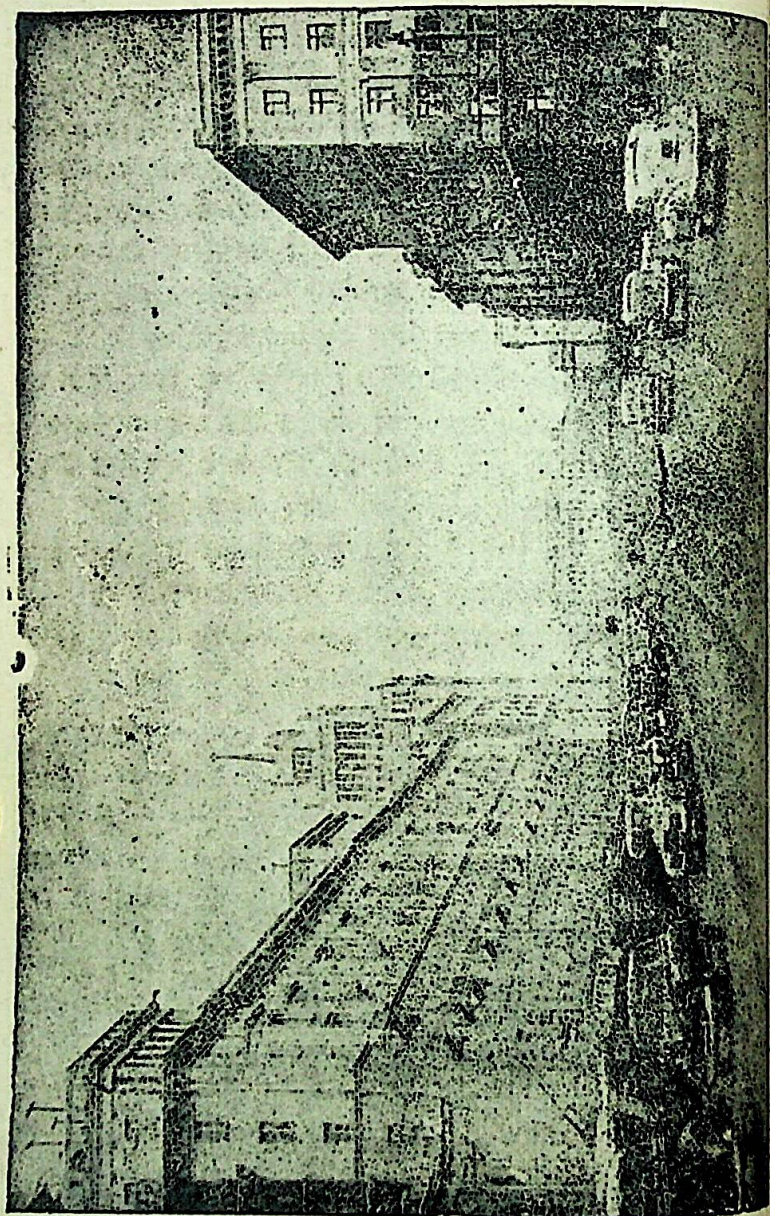
मास्को जहाँ केन्द्रीय कृषक संस्था है

गयी हैं। इसमें एक अजायबघर, एक प्रदर्शन-भवन तथा व्याख्यान देने के कमरे हैं। प्रदर्शन-भवन में खेती से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी चीजें रखी हुई हैं। कुछ कमरों में नमूने के हल, मशीनें, घर तथा खेतों के मानचित्र रखे हुए हैं। एक बहुत ब ेकमरे में किसानों को यह दिखाया जाता है कि बिजली से क्या-क्या लाभ उठा े जा सकते हैं। इस भवन के पास ही एक भोजनालय है, जहाँ पढ़ने के लिए आनेवाले किसानों को बिना मूल्य भोजन मिलता है।

'सेंट्रल पीजेंटरी होम' में देश के भिन्न-भिन्न कोनों से शिक्षा पाने के लिए किसान लोग आया करते हैं। उनके लिए दो महीने का पाठ्य-क्रम निश्चित है। इसे समाप्त कर वे अपने-अपने घर लौट जाते हैं। किसानों की शिक्षा के लिए देश के अन्य भागों में भी छोटी-छोटी ऐसी कई संस्थाएँ हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—नित्य, धैर्यवान्, सन्तोषी, प्रदर्शन, उचित और पाठ्यक्रम।

(२) सन्तोष और धै ै में क्या अन्तर है? वाक्यों मे प्रयोग कर स्पष्ट कीजिए।

(३) व्युत्पत्ति बताइए—परिश्रम, भोजनालय और सुविधा।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) रूस की जलवायु कैसी है?

(५) रूसी किसानों के घर प्रायः कैसे होते हैं?

(६) रूसी किसानों को कौन-कौन-सी सुविधाएँ प्राप्त हैं?

(७) भारतीय तथा रूसी किसानों के जीवन की तुलना कीजिए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(८) प्रथम अनुच्छेद से पाँच संज्ञाएँ चुनकर उनकी पद-व्याख्या कीजिए।

(९) अन्तिम अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(१०) पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखिए।

: १८ :

कृष्ण की लोक रक्षा

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म जिला आजमगढ़

अन्तर्गत निजामाबाद गाँव में वैशाख कृ॰ ३, सम्वत् १६२२ को हुआ था। अपने ग्राम की पाठशाला से मिडिल पास करने के पश्चात् वह सरकारी नौकर हो गये। सरकारी नौकरी करते हुए ही बाबा सुमेर सिंह के सत्सङ्ग से उन्हें कविता करने की प्रेरणा मिली। पहले वह ब्रजभाषा में कविता करते थे। द्विवेदीजी के सम्पर्क में आने पर उन्होंने खड़ी बोली में कविता करना आरम्भ किया। तब से वह बराबर खड़ी बोली में कविता करते रहे। ६ मार्च सन् १६४७ को उनका देहान्त हुआ। उनकी प्रस्तुत कविता में कृष्ण की लोक-रक्षा का सुन्दर उदाहरण अङ्कित किया गया है।]

निदाघ का काल महादुरन्त था,
भयावनी थी रवि-रश्मि हो गयी।
तवा समा थी तपती वसुन्धरा,
स्फुलिंग-वर्षा-रत तप्त व्योम था।
विदग्ध होके कण धूलि-राशि का,
हुआ तपे लौह-कणों समान था।
प्रतप्त बालू इव दग्ध भाड़ की,
भयङ्करी थी महि-रेणु हो गयी।

समेत गोपालक वत्स धेनु के,
बिता रहे थे दिवसेक शान्ति से।
मुकुन्द ऐसे अमनोज्ञ काल को,
वनस्थिता एक निकुञ्ज मञ्जु में।
परन्तु प्यारी यह शान्ति श्याम की,
विनष्ट औ' भङ्ग हुई तुरन्त ही।
कठोर दूरागत भूरि शब्द से,
अजस्र जो था अति घोर हो रहा।
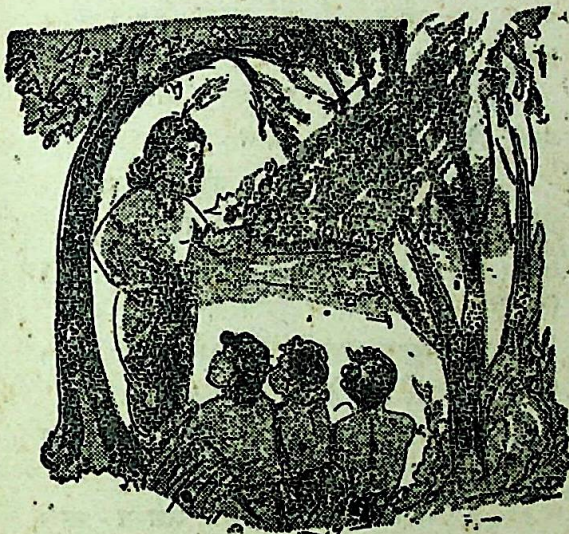
पुनः - पुनः कान लगा - लगा सुना,
व्रजेन्द्र ने उत्थित शब्द घोर को।
अतः उन्हें ज्ञात तुरन्त हो गया,
प्रचण्ड दावा वन मध्य है लगी।
गये उसी ओर अनेक गोप थे,
स्व - धेनुओं के कुछ काल पूर्व ही।
हुई इसी से निज - बन्धुवर्ग की,
अपार-चिन्ता व्रज - व्योम - चन्द्र को।

अतः बिना ध्यान किये प्रचण्डता—
दिनेश को, ग्रीष्म की, समीर की,
व्रजेन्द्र दौड़े तज शान्ति - कुञ्ज को,
सुसाहसी गोप - समूह सङ्ग ले।
निकुञ्ज से बाहर श्याम ज्यों कढ़े,
उन्हें महा - पर्वत धूम पुञ्ज का—
दिखा पड़ा दक्षिण ओर सामने,
मलीन जो था करता दिगन्त को।
समीप जाके बलभद्र - बन्धु ने,
वहाँ महाभीषण - काण्ड जो लखा—
प्रवीर है कौन त्रिलोक बीच जो,
स्वनेत्र से देख उसे न काँपता।
यहीं विलोका करुणा - निकेत ने,
स्वबन्धुओं को सङ्ग धेनुवत्स के।
शिखाग्नि द्वारा जिनकी शनैः-शनैः,
विनष्ट संज्ञा अधिकान्श थी हुई।
निरर्थ चेष्टा करते विलोक के
उन्हें स्वरक्षा - हित अग्नि - गर्भ से।
दया बड़ी ही व्रज - देव को हुई,
विशेषतः देख उन्हें अशक्त - सा।
अतः सबों से यह श्याम ने कहा—
स्वजाति उद्धार महान धर्म है।
चलो करें पावक में प्रवेश औ'
स-धेनु लेवें निज जाति को बचा—
विपत्ति से रक्षण सर्व - भूत का,
सहाय होना असहाय - जीव का,
उबारना सङ्कट से स्वजाति को,
मनुष्य का सर्व - प्रधान कृत्य है।

बिना न त्यागे ममता स्वप्राण की,
विना न जोखों ज्वलदग्नि में पड़े--
न हो सका विश्व महान - कार्य है,
न सिद्ध होता भव - जन्म हेतु है।
व्रजेन्द्र ने यद्यपि तीव्र शब्द में
किया समुत्तेजित सर्व गोप को।
तथापि साथी उनके स्वकार्य में,
न हो सके लग्न यथार्थ रीति से।
स्वसाथियों की यह देख दुर्दशा,
प्रचण्ड दावानल में प्रवीर लौं--
स्वयं धँसे श्याम दुरन्त वेग से,
चमत्कृता - सी वन - मेदिनी बना।
प्रवेश पश्चात् सवेग ही कढ़े,
समस्त गोपालक धेनु सङ्ग थे।
अलौकिक स्फूर्ति दिखा त्रिलोक को,
वसुन्धरा कल - कीर्ति बेलि बो॥
बचा सबों को बलवीर ज्यों कढ़े,
प्रचण्ड ज्वालामय पन्थ त्यों हुआ।
विलोकते ही यह काण्ड, श्याम को--
सभी लगे आदर दे सराहने॥

अभ्यास के लिए प्रश्न

१--शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए--निदाघ, महादुरन्त, वसुन्धरा, वत्स, उत्थित, मञ्जु, अमनोज्ञ, निकुञ्ज, भूत, व्योम, दिगन्त और दावानल।
(२) पर्यायवाची बताइए--रश्मि, राशि और कृष्ण।
(३) विपरीतार्थक बताइए--शान्ति, अनेक, दूर और प्रकाश।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) हरिऔध की भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।
(५) पाठ के आधार पर कृष्ण के चरित्र की विशेषता बताइए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) उन पंक्तियों को चुनिये जिनसे मनुष्य के सर्वप्रधान कृत्य का उपदेश मिलता है ?
(७) 'स्वयं धँसे.......बना' से कृष्ण के किन गुणों का परिचय मिलता है ?

४—रचना-सम्बन्धी

(८) लोक-रक्षा की कथा अपने शब्दों में लिखिए।

—:०:—

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

[हिन्दी कथाकारों में प्रेमचन्द का स्थान सर्वोपरि है। वह हिन्दी के अद्वितीय कलाकार थे। उन्होंने हिन्दी में उस समय लिखना आरम्भ किया, जब उसका साहित्य अत्यन्त हीनावस्था में था। उन्होंने अपनी रचनाओं से उसका स्तर ऊंचा उठा दिया। इस पाठ में उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विचार किया गया है।]
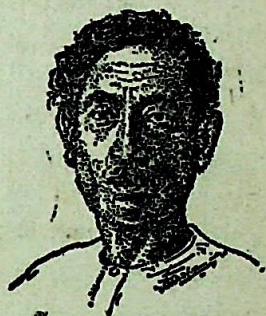
प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार और उपन्यासकार थे। हिन्दी में उनका व्यक्तित्व बेजोड़ था। एकहरा शरीर, भरा हुआ चेहरा, प्रशस्त ललाट, तेजस्वी आँखें—जहाँ उनके स्वभाव की गम्भीरता और सौम्यता प्रकट करती थीं, वहाँ उनसे उनकी अध्ययनशीलता और प्रतिभा का भी परिचय मिलता था। उनका रहन-सहन साधारण और उनकी वेश-भूषा सरल थी। उन्होंने अपने जीवन में कृत्रिम शृङ्गार को कभी स्थान नहीं दिया। दरिद्रता में ही उनका जन्म हुआ, दरिद्रता में ही उनका पालन-पोषण हुआ और अन्त में दरिद्रता से ही जूझते-जूझते वह समाप्त हो गये। आरम्भ में तो उनकी स्थिति इतनी भयावह थी कि वह अपना निर्वाह पुरानी पुस्तकें बेच कर भी नहीं कर पाते थे। विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् अध्यापक और फिर डिप्टी इंस्पेक्टर होने तक उनकी आर्थिक दशा में विशेष उन्नति नहीं हुई। महात्मा गान्धी की पुकार पर उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ी और साहित्य-सेवा की ओर अग्रसर हुए; पर जीवन की इस नयी परिस्थिति में भी वह आर्थिक सङ्कटों से मुक्त न हो सके। इन सङ्कटापन्न परिस्थितियों में परिश्रम ही उनके जीवन का आभूषण था।

रोगग्रस्त होने पर भी वह परिश्रम से अपना हाथ नहीं खींचते थे। लिखने का उन्हें व्यसन था और इसी व्यसन में वह अपने परिश्रम की थकान भूल जाते थे। उनका कहना था—"मैं मजदूर हूँ, मजदूरी किये बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं।" उनके इस कथन में अभिमान तो था ही, एक दुर्दमनीय पीड़ा और अपने उस समाज के प्रति व्यंग्य भी था जो उनके भरण-पोषण का भार वहन नहीं कर सकता था। एक बात और थी। वह अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट पालने के लिए ही परिश्रमशील नहीं थे। साहित्य-सेवा को उन्होंने कभी अपनी जीविका का साधन नहीं बनाया। यदि वह ऐसा करते तो कभी इतनी ऊँचाई तक न पहुँच पाते। वह परिश्रमशील थे इसलिए कि उनके हृदय में इतनी वेदनाएँ, इतनी पीड़ाएँ, इतनी चिनगारियाँ भरी हुई थीं कि वह उन्हें बिना व्यक्त किये सुख से सो नहीं सकते थे। वास्तव में इसी प्रकार की साहित्य-साधना में उनके जीवन का रहस्य छिपा हुआ था।

प्रेमचन्द जितने ही निर्धन और दरिद्र थे—उतने ही उदार, सरल और विनयी भी थे। उनमें स्वाभिमान की मात्रा अधिक थी। आजीवन आर्थिक सङ्कटों के बीच रहने पर भी उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। जागरूक तो वह इतने थे कि उन्हें अपनी जाति, अपने समाज और अपने देश की प्रत्येक स्थिति का सम्यक् ज्ञान था। उनकी आँखों के सामने राजा-महाराजाओं की अट्टालिकाएँ भी थीं और भिखारियों की झोपड़ियाँ भी; सेठ-साहूकारों की धनराशि भी थी और भोले-भाले किसानों की परिश्रम की कमाई भी; अन्तःपुर में निवास करनेवाली रानियाँ भी थीं और कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाली असहाय विधवाएँ भी। इसी लिए उन्होंने कभी अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष प्रकट नहीं किया। वह दरिद्रता के शृङ्गार थे और वरदान के रूप में ही उसे ग्रहण करते थे। संसार की सारी जटिलताओं का उन्हें अच्छा ज्ञान था; इसीलिए वह निरीह और सरल थे। धार्मिक ढकोसलों में उनका विश्वास नहीं था।

प्रेमचन्द अपने समाज और अपने देश की विषम परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने प्रत्येक प्रकार के जीवन का गम्भीर

अध्ययन किया था और उससे अपनी लेखनी के लिए सामग्री एकत्र की थी। वह निर्धनों की जिह्वा और मूक प्राणियों की वाणी थे। वह अपने जीवन भर उन्हीं के लिए लड़ते रहे। सामाजिक विषमताओं और राजनीतिक अत्याचारों से प्रभावित होने पर भी उन्होंने कभी ऐसी बातें नहीं सुनायीं, जो कार्य रूप में न लायी जा सकें। वह जिन बातों में विश्वास करते थे, उन्हें ही अपने जीवन में स्थान देते थे। मनसा, वाचा और कर्मणा वह एक थे। उनके भौतिक जीवन और साहित्यिक जीवन में अन्तर नहीं था। दोनों के समन्वय में ही उनके जीवन की, उनकी कला की और उनके साहित्य की सफलता का रहस्य था। वह मान-मर्यादा के भूखे नहीं थे। सरस्वती के मन्दिर में बैठ कर उन्होंने कभी लक्ष्मी की आराधना नहीं की। वह समाज के सेवक और साहित्य के मौन साधक थे।

ऐसे थे प्रेमचन्द और ऐसा था शक्तिशाली उनका व्यक्तित्व! हिन्दी कथा-साहित्य को उनके व्यक्तित्व से वहुत वल मिला। उनके पूर्व उसका रूप अत्यन्त विकृत, चिन्ताजनक और असन्तोषप्रद था। वह इतना निर्जीव और उच्छृङ्खल था कि उसकी गणना साहित्य की परिधि के भीतर हो ही नहीं सकती थी। वास्तविक जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उसके पात्र काल्पनिक होते थे और वे जीवन की अधोगामिनी प्रवृत्तियों का ही अङ्कन करते थे। उनमें जीवन के उठान की शक्ति नहीं थी। इसमें सन्देह नहीं कि बङ्किम बाबू के उपन्यासों ने जनता की रुचि में विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया था और उनके द्वारा हिन्दी के पाठक श्रेष्ठ लेखकों की कल्पना-विभूति से परिचित हो चुके थे; फिर भी मौलिक उपन्यासों की वड़ी कमी थी। प्रेमचन्द ने इस कमी को पूरा किया और इसके साथ ही हिन्दी-कथा-साहित्य में परिवर्तन की एक क्रान्ति की सूचना दी।

प्रेमचन्द जीवन और उसकी वास्तविक परिस्थितियों के जानकार थे। जितना उन्हें अपनी परिस्थिति का ज्ञान था, उतना ही उन्हें अपने समाज और अपने देश की परिस्थितियों का ज्ञान भी था। उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाव, भाषा, रहन-सहन, आशा-निराशा, इच्छा-अनिच्छा, सुख-दुःख, राग-द्वेष, और सूझ-बूझ के वह पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी

गति झोपड़ियों में भी थी और महलों में भी। वह दाने-दाने के लिए भटकनेवाले भिखारियों से भी परिचित थे और हाथी पर बैठे महन्तों से भी। वह खोमचेवालों की परिस्थितियों के भी जानकार और बड़े-बड़े व्यापारियों की आवश्यकताओं के भी। वह निर्धन किसानों के भी मित्र थे और पूँजीपतियों के भी। वह चमारिनों के दुःख-सुख का भी अनुभव रखते थे और अन्तःपुर में पुष्प-शय्या पर सोनेवाली रानियों के विलासपूर्ण जीवन का भी। वह सधवा का भी मर्म जानते थे और विधवा का भी। इस प्रकार जीवन के निम्नतम और उच्चतम सभी प्राणियों, सभी वर्गों और सभी समाजों से उनका आत्मीय सम्बन्ध था। उनके पूर्व किसी हिन्दी कथाकार का अनुभव-क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं था; इसलिए उस समय का कथा-साहित्य प्रायः कल्पना-प्रसूत ही था। प्रेमचन्द ने उसे कल्पना-लोक के दूषित वातावरण से निकाल कर जीवन की अनुभूतियों से अनुरञ्जित किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताओ—प्रतिभा, कृत्रिम, दरिद्रता, सङ्कटापन्न, जाग[illegible] कल्पना-प्रसूत।

२—विषय-सम्बन्धी

(२) हिन्दी के कथाकारों में प्रेमचन्द का क्या स्थान है?

(३) प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में भारतीय समाज के किस [illegible] चित्रण किया है?

३—व्याकरण-सम्बन्धी

(४) व्याकरण से क्या हैं—कल्पना-प्रसूत, अध्ययनशीलता, [illegible] अनुरञ्जित।

(५) अन्तिम वाक्य का वाक्य विश्लेषण कीजिए।

४—रचना-सम्बन्धी

(६) अपने वाक्यों में प्रयोग करो—कल्पना, अनुभूति, अनुर[illegible]

(७) प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजि[illegible]

—:०:—

: २१ :

सृष्टि का विकास

[आज हमें अपने चारों ओर फैले हुए विश्व को देखकर अधिक आश्चर्य होता है। नदी, वन, पर्वत, वनस्पति, पशु, पक्षी और मानव कैसे उत्पन्न हुए, यह जानने की सबकी इच्छा होती है। प्रस्तुत पाठ में इन बातों के बारे में अत्यन्त मनोरञ्जक ढङ्ग से बताया गया है।]

पहले पृथ्वी पर जीव नहीं थे। एक युग ऐसा था, जब यह पृथ्वी भी नहीं थी और न इसका यह रूप ही था। विद्वानों का कथन है—पृथ्वी के जन्म के पूर्व गैस का एक धधकता हुआ पिण्ड था, जिस पर जल और वायु के प्रभाव के कारण न तो कोई रहता था और न कुछ उगता था। यह पिण्ड बादल के रूप में सूर्य के चारों ओर बड़े वेग से घूमा
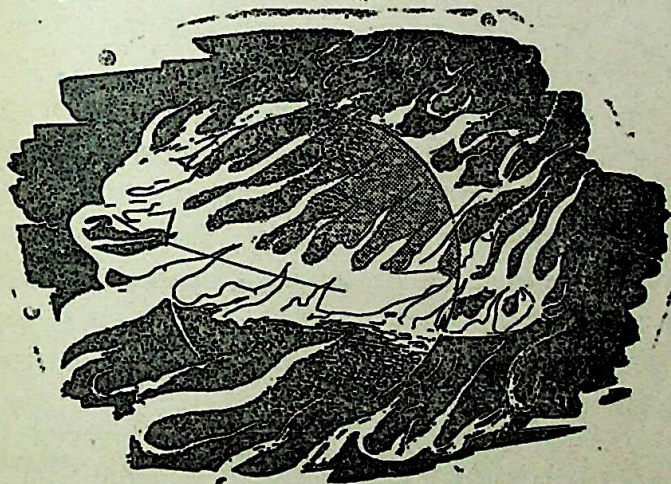
करता था। धीरे-धीरे यही बादल सिमटता गया और इसकी आकृति बनने लगी। सूर्य के चारों ओर घूमने के कारण इसकी गर्मी वायु-मण्डल

में भी फैल गयी। इसकी आँच भी कम होती गयी और इसकी ऊ
परत की मोटाई बढ़ती गयी।

बहुत दिनों के बाद एक ऐसा समय आया, जब इसके चारों ओर
वाष्प-समूह बादल में परिणत हो गये। उन बादलों से वर्षा हुई
पृथ्वी अब भी इतनी गर्म थी कि वह वर्षा नीचे तक नहीं पहुँच स
ऊपर ही ऊपर पुनः भाप बन गयी; परन्तु अधिक काल तक यह द
भी न रह सकी। इसमें और भी आश्चर्यजनक परिवर्तन होने ल
अधिक दिनों तक चारों ओर अन्धकार छाया रहा और बादल ही बा
दिखाई देने लगे। इन बादलों में सूर्य विलीन हो गया। सैकड़ों वर्ष
यही दशा रही। घनघोर वर्षा के कारण सर्वत्र पानी ही पानी दिख
देने लगा।

जल पृथ्वी की बहुत-सी वस्तुओं को बहा ले गया। इससे गर्त
गये। इन गर्तों में पानी भर गया। इस प्रकार संसार में समुद्र का
हुआ। जो स्थान कठोर होने के कारण न बह सके, वे ऊपर को
और ऊँचे होने के कारण स्थल बन गये। इस प्रकार हमारी पृथ्वी
जन्म हुआ।

समुद्र और पृथ्वी बनने के पश्चात् एक दिन ऐसा आया, जब बा
फट गये और सूर्य निकल आया। सूर्य की गर्मी पाकर पृथ्वी हिल उ
दिन और रात होने लगे, ऋतुएँ बदलने लगीं और जीवों का विकास होने ल

विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है कि सर्वप्रथम जीवों का जन्म
में हुआ है। आरम्भ में इन जीवों का कोई निश्चित आकार-प्रकार
था। इनका शरीर अत्यन्त सूक्ष्म था। ये जीव न तो पशु ही थे,
वनस्पति ही कहे जा सकते थे। इनमें ोनों के सूक्ष्म लक्षण वर्तमान
इनका रीर केवल कोषवाला था।

इन सर्वप्रथम जीवों की वृद्धि की कहानी भी अत्यन्त मनोरञ्जक
जब ये एक कोषवाले जीव पूर्ण रूप से विकसित हो जाते थे, तब इ
दो भाग हो जाते थे। ये दोनों भाग भिन्न-भिन्न जीवों में परिणत
जाते थे। फिर ये दो से चार, चार से आठ और आठ से सोलह

जीवन का प्रारम्भ

जेलि मत्स्य

जलीय वृक्ष

मत्स्य

सरीसृप

जलस्थलीय वृक्ष

स्थलीय वृक्ष

स्तनपायी

पक्षी

बन्दर

जलस्थलीय जीव

मानव

वनमानुष

लांगूली

थे। इस प्रकार इन जीवों की संख्या सदैव बढ़ती रहती थी। ये कभी अपनी मौत नहीं मरते थे। जल के अभाव अथवा चोट खाने पर ही इनकी मृत्यु होती थी। इस प्रकार के जीव हम आजकल भी पानी में देखते हैं। इनको अंग्रेजी में 'अमीबा' कहते हैं।

अमीबा लाखों वर्ष तक जल की धारा के साथ इधर से उधर बहते रहे। इसी बीच प्राण-रक्षा के भय से इनमें से कुछ जीवों को समुद्र-तल में बिछी हुई चिकनी मिट्टी में छिपना पड़ा। यही प्राणी आजकल पेड़-पौधों के पूर्वज कहे जाते हैं।

अमीबा-वंश के जो प्राणी भयभीत नहीं हुए, वे इधर-उधर घूमते रहे। धीरे-धीरे इनके पैर निकल आये। पर आरम्भ में ये जुड़े हुए थे। इनमें कई ऐसे भी थे, जिनके काँटे बन गये थे। इन काँटों की सहायता से ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते थे। यही काँटोंवाले प्राणी मछलियों के पूर्वज कहे जाते हैं। धीरे-धीरे कई वर्षों तक इनकी आकृति भी बदलती गयी और इनसे सारा जल भर गया।

पेड़-पौधे भी पानी में अधिक हो गये। ये इतने हो गये कि एक स्थान में समा न सके। ऐसी दशा में इन्होंने भी नया स्थान खोजना आरम्भ किया। जल में स्थान न पाकर ये बाहर आ गये। सर्वप्रथम इन्होंने समु के पास ही दलदलों में रहना आरम्भ किया। यहाँ इनको समुद्र दिन में दो बार ज्वार-भा के कारण नमक के पानी से ढक देता था, पर ऊपर की हल्की हवा में इनका दम घुटता था। कालान्तर में इनमें भी परिवर्तन हुआ। इन्होंने नवीन वातावरण के अनुकूल अपना जीवन बना लिया। इनका आकार भी बढ़ गया और ये पेड़-पौधे हो गये। फूलों में रङ्ग-विरङ्गे फल पैदा होने लगे और न पर कीड़े-मकोड़े आकर बै ने लगे। धीरे-धीरे इनका वंश बढ़ने लगा और सारा संसार पेड़-पौधों से भर गया।

मछलियाँ भी पानी में रहते-रहते ऊब गयीं। इन्होंने साँस लेना सीख लिया। अब यह जल और स्थल में भी रह सकती थीं। एक बार पानी से निकलने के पश्चात् कुछ को जल में पुनः प्रवेश करना पड़ा

नहीं आया, और यह स्थल पर ही रहने लगीं। धीरे-धीरे इनमें से कुछ ने पृथ्वी पर रेंगना सीख लिया। पहले-पहल पृथ्वी पर अधिक शीघ्रता से चलने-फिरने से इनको कष्ट होता था, अतः इन्होंने अपने पैरों को सुडौल बनाना आरम्भ किया। पैरों के बढ़ने के साथ-साथ इनका शरीर भी बढ़ता गया। यहाँ तक कि ये ३० से ४० फुट तक की लम्बाई के हो गये। कालान्तर में इन जीवों से सारी पृथ्वी भर गयी। ये 'सरीसृप' कहलाये।

इसके पश्चात् अनेक जानवरों ने अपनी रक्षा के लिए पेड़-पौधों पर रहना आरम्भ किया। वृक्षों पर रहने के लिए इन जानवरों को अब और ही प्रकार के चलने के साधन की आवश्यकता पड़ी; अतः अब उनके शरीर के एक भाग की आकृति में परिवर्तन होने लगा और वह छाते जैसा बन गया। यह छाते-जैसी वस्तु उनके दोनों ओर थी और ये अब इसीको फैला के एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक जाते थे। इनकी पूँछ इनको उड़ कर दूसरे वृक्ष पर जाने में सहायता प्रदान करती थी। कई सहस्र वर्ष पश्चात् ये जीव आजकल के पक्षी बन बैठे।

तत्पश्चात् एक और अनोखी बात हुई। ये महान् जीव मर गये। हम यह नहीं बता सकते कि यह ऐसा क्यों और किस प्रकार हुआ! अब केवल इनके कङ्काल ही साक्षी हैं। ऐसा ही एक कङ्काल हमारे देश में भी पाया गया है और यह आजकल श्रीनगर (कश्मीर) के अजायब-घर में सुरक्षित है।

पृथ्वी जीवों से शून्य नहीं हुई। उस पर एक नये प्रकार के जीवों का जन्म हुआ। ये भी उन्हीं के वन्शज थे, पर उनसे बहुत कुछ भिन्न भी थे। ये जीव अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाते थे। इसलिए इनका नाम स्तन-पायी जीव रखा गया। इनमें न तो मछलियों-सदृश काँटे थे, न पक्षियों-जैसे पंख ही। इनका शरीर बालों से ढका हुआ था।

इन स्तन-पायी जीवों में से एक जीव आश्रय और भोजन खोजने में अत्यधिक चतुर था। यह अपने अगले पैरों से काम लेता था। यह धीरे-धीरे अगले पैरों से शिकार पकड़ कर खा सकता था। इसका पैर परिवर्तित

होते-होते हाथ जैसा बन गया और पिछले पैरों पर शरीर का सारा भ
आ गया। अब यह पिछले पैरों की सहायता से चल-फिर सकता था।

यह पशु आजकल के 'बन्दर' और 'एप जैसा था। आकृति में यह उ
बड़ा था। यह एक कुशल शिकारी भी था और प्रत्येक प्रकार की जलव
में रहने योग्य था। धीरे-धीरे इसमें सामाजिक जीवन का प्रादुर्भाव हुआ
अर्थात् यह अपनी जाति के अन्य भाइयों के साथ झुण्ड में रहने लगा
इस पर यदि आक्रमण होता तो सब मिलकर शत्रु का सामना क
थे। अपने बच्चों को भावी सङ्कट की सूचना देने के लिए इसने बो
भी सीख लिया। इसकी बोली ही बाद में भाषा बन गयी। यही
हमारा पूर्वज है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—अभाव, आकृति, सर्वत्र, परिणत, ज्वार-भा
विज्ञान, कालान्तर और पूर्वज।

(२) पर्यायवाची बताइए—जल, संसार और बादल।

(३) विपरीतार्थक बताइए—सूक्ष्म, जीव और आरम्भ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) अमीबा से क्या तात्पर्य है?

(५) स्तनपायी जीव से आप क्या समझते हैं?

(६) सर्वप्रथम जीव कहाँ उत्पन्न हुए?

(७) पेड़-पौधों के पूर्वज कौन हैं?

३—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) व्याकरण से क्या है?—मनोरञ्जन, रहते-रहते, घनघोर, काला
पश्चात् और आजकल।

(९) लिङ्ग-भेद बताइए—मछली, पृथ्वी, सूर्य, फूल, समुद्र और ऋतु।

४—रचना-सम्बन्धी

(१०) मुहावरों का प्रयोग कीजिए—अपनी मौत मरना, दम घुटना बहा ले जाना।

—:०:—

: २२ :

विनय के पद

भक्त सूरदास

[भक्त सूरदास का जन्म सं० १५४० के लगभग माना जाता है। उनकी जन्म-भूमि आगरा जानेवाली सड़क पर अवस्थित 'रुनकता' ग्राम बतायी जाती है। वह सारस्वत ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम रामदास था। वह स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। सङ्गीत से उन्हें विशेष प्रेम था और वह पद बना कर गाया करते थे। वह जन्म से अन्धे नहीं थे। वह सच्चे कृष्ण भक्त थे। उनकी रचनाएँ 'सूर-सागर' में संगृहीत हैं। उनकी भाषा ब्रजभाषा है। हिन्दी के प्राचीन कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। कृष्ण की बाल-लीलाओं का उन्होंने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।]

[१]

मो सम कौन कुटिल खल कामी !
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमक हरामी ।।
भरि-भरि उदर विषय कौ धायौ जैसे सूकर कामी ।
हरि-जन छाँड़ि हरि-विमुखन की निसि दिन करत गुलामी ।।
पापी कौन बड़ो है मोसे सब पतितन में नामी ।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी ।।

[२]

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरौ !
समदरसी है नाम तिहारो चाहौ तो पार करौ ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
पारस गुन-अवगुन नहिं मानत, कञ्चन करत खरौ ॥
इक नदिया, इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ ॥
जब दोऊ मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ ॥
एक जीव, इक ब्रह्म कहावत, सूर-स्याम झगरौ ।
अब की बेर मोहि नाथ उबारो, नहिं पन जात टरौ ॥

[३]

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पञ्छी, पुनि जहाज पै आवै ॥
कमल-नयन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै ।
परम गङ्ग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल खावै ।
'सूरदास' भु कामधे तजि, छेरी कौन दुहावै ॥

[४]

चरन कमल बन्दौ हरि-राई !
जाको कृपा पङ्गु गिरि लङ्घै अन्धे को सब कुछ दरसाई ॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुणामय, बार-बार बन्दौ तिहि पाई ॥

[५]

तजौ मन ! हरि-विमुखन कौ सङ्ग ।
जिनके सङ्ग कुबुद्धि उपजत परत भजन में भङ्ग ॥

कहा होत पय-पान कराये, विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गङ्ग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अङ्ग।
गज को कहा नहाये सरिता, बहुरि धरै खहि अङ्ग॥
पाहन पतित बान नहीं बेधत, रीतो करत निषङ्ग।
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़ै न दूजो ङ्ग॥

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—कुटिल, खल, उदर, विषय, सूकर, भव, दुविधा, अम्बुज, कामधेनु, पय, सरिता और पाहन।

(२) तत्सम बताइए—खेह, महातम, पञ्छी, स्याम, पत, समद, स्त्री, पति, बिसरायो और दुविधा।

(३) पर्यायवाची बताइए—कामधेनु, नदी, श्रीपति, कमल, मधु और नयन।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) सूरदास की भक्ति किस के प्रति थी?

(५) 'कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै' से सूर का क्या तात्पर्य है

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) प्रथम पद से कवि की किस विशेषता का आभास मिलता है

(७) 'समदरसी है नाम तिहारो' में 'समदरसी' से सूर का क्या तात्पर्य है

४—रचना-सम्बन्धी

(८) सूर की भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिए

—:०:—

: २३ :

विज्ञान की देवी

[विज्ञान की उन्नति और उसके प्रसार में पुरुषों की भाँति स्त्रियों ने भी पूरा योग दिया है। प्रस्तुत पाठ में एक ऐसी स्त्री का चरित्र-चित्रण किया गया है जिसने अपने आविष्कार से विज्ञान को अभूतपूर्व शक्ति दी है। विज्ञान के लिए स नारी का त्याग अनुकरणीय है। इसके जीवन से हमें अनेक शिक्षायें मिलती हैं।]

श्रीमती क्यूरी का जन्म पोलैंड की राजधानी 'वारसा' में ७ नवंबर सन् १८६७ ई० को हुआ था। वह अपने भाई-वहनों में सबसे छोटी थी। इसलिए सभी उस पर स्नेह रखते थे और उसे 'मेरी' कहकर पुकारते थे।

मेरी ने अपनी वड़ी वहन से पढ़ना-लिखना सीखा और थोड़े ही दिनों में पुस्तक पढ़ने लगी। उसके पिता स्क्लोडास्की वारसा के एक स्कूल में विज्ञान के अध्यापक थे। मेरी अपने पिता के मुख से दिन-रात विज्ञ न की बातें सुना करती थी। परियों की कहानियों की अपेक्षा न बातों में उसे विशेष आनन्द मिलता था। उसके पिता की निजी प्रयोगशाला भी थी। इसी योगशाला में वह खेला करती थी और अपने पिता को भिन्न-भिन्न प्रयोग करते देख कर प्रयोग करने लगती थी। बाल्यावस्था का यह खेल धीरे-धीरे उसके हृदय में घर करने लगा। समय आने पर उसके पिता ने उससे प्रयोगशाला का साधारण काम लेना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार थोड़ी ही अवस्था में वह प्रयोगशाला की प्रायः सभी वस्तुओं से भली-भाँति परिचित हो गयी।

मेरी में प्रखर वुद्धि थी, प्रतिभा थी और थी विज्ञान के प्रति सच्ची लगन। वह प्रत्येक प्रयोग बड़ी सावधानी से करती थी और सफल परिणाम पर पहुँचती थी। वह परिणामों को एक पुस्तिका में लिख लेती थी और उन पर घण्टों मनन किया करती थी। किसी प्रयोग के विफल हो जाने पर वह उसे पुनः करती थी। कभी-कभी तो वह एक ही प्रयोग

कई दिनों तक करती रहती थी और जब तक उसे उसमें सफलता न मिलती थी, तब तक वह उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। विभिन्न वस्तुओं को मिला कर नयी वस्तु बनाना और उसके गुणों की परीक्षा करना अत्यन्त रुचिकर था। इसका फल यह हुआ कि वह बहुत-सी रासायनिक वस्तुओं के गुणों से अच्छी तरह परिचित हो गयी।
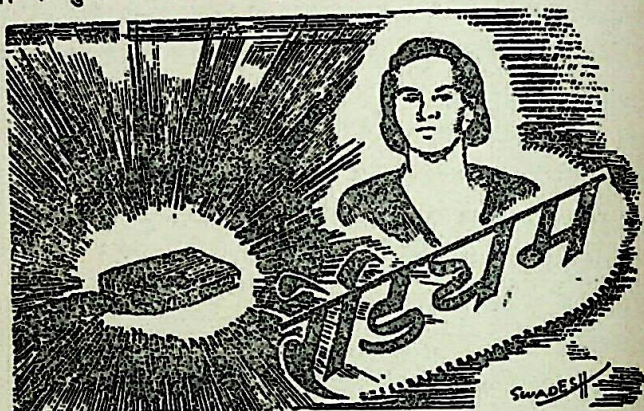
मेरी के पिता की आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी; इसलिए विवश होकर उन्हें एक रूसी परिवार में अध्यापन-कार्य करना पड़ता वह उनके जीवन का ऐसा समय था जब रूस-निवासी पोलैंडवालों खुल्लम-खुल्ला अत्याचार कर रहे थे। मेरी राष्ट्रीय विचार की ऐसे ही विचारवाले कुछ लोगों ने रूसी स्वेच्छाचारिता का अन्त करने अभिप्राय से कई गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाएँ खोल दी थीं। इन संस्थाओं मेरी का भी सम्बन्ध था। जब रूसी गुप्तचरों ने इन संस्थाओं के कर्ताओं और उनकी गुप्त कारंवाइयों के विषय में सरकार को सूचना तब पुलिसवालों ने लोगों को पकड़ना आरम्भ कर दिया। मेरी वृद्ध के वेश में अपनी जान बचाकर घर से भागी और अकेले पेरिस पहुँची।

पेरिस पहुँचने पर मेरी को आर्थिक कठिनाइयों का सामना पड़ा। उसके पास एक पाई तक नहीं थी। रूसी गुप्तचरों और के भय से पोलैंड जाना उसके लिए बड़ा कठिन था। अन्त में

पर एक छोटी कोठ ी लेकर वह काम की खोज में निकली। बहुत परिश्रम करने पर उसे पेरिस विश्वविद्यालय में बोतल साफ करने का काम मिला। कुछ दिनों तक वह यहाँ काम करती रही। धीरे-धीरे दो वैज्ञानिकों से उसका परिचय हो गया। उन्होंने मेरी की वैज्ञानिक योग्यता देखकर उसे एम० क्यू ी की सहायता के लिए भेज दिया।

एम० क्यूरी पेरिस के डाक्टर क्यूरी के द्वितीय पुत्र थे। इस समय वह भौतिक तथा विश्वविद्यालय की रसायनशाला-सम्बन्धी प्रयोगशाला के प्रधान अध्यापक थे। तेरह वर्ष से वह अकेले इसी कार्य में लगे हुए थे। प्रयोगशाला का काम बहुत बढ़ गया था, अतएव वह एक ऐसी सुशिक्षिता युवती की तलाश में थे, जो घर का काम-काज करने के अतिरिक्त प्रयोग-शाला में उनकी सहायता भी कर सके। सौभाग्य से ऐसे अवसर पर प्रयोगशाला में मेरी का आगमन हुआ। मेरी ने वहाँ नौकरी कर ली। विज्ञान के प्रति ोनों के हृदय में अत्यधिक प्रेम था। दोनों एक साथ प्रयोग करते थे। एम० क्यूरी को जब मे ी की असाधारण बुद्धि का परिचय मिला, तब उन्हों ने उससे सन् १८९५ ई० में विवाह कर लिया।

श्रीमती क्यूरी अत्यन्त पति-परायण स्त्री थी। वह ऊपरी तड़क-भड़क से घृणा करती थीं। अपने काम से उन्हें काम था। उनके स्वभाव में दृढ़ता थी। वह आदर्श माता और देशभक्त थीं। १२ सितंबर सन् १८९७ ई० को उनके गर्भ से एक पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम ऐरिन क्यूरी रक्खा गया। अपनी नवजात बालिका के पालन-पोषण के पश्चात् जो समय बचता था, उसे वह विज्ञान के अध्ययन में ही व्यतीत करतीं। ३० वर्ष तक अनवरत परिश्रम करने के पश्चात् सन् १८९८ ई० में उन्होंने गणित और भौतिक विज्ञान में डिग्री प्राप्त कर ली और नये-नये प्रयोग करने लगीं।

सन् १९०३ ई० में श्रीमती क्यूरी ने अपने नवीन प्रयोगों का विवरण तैयार कर निबन्ध के प में पेरिस की विज्ञान-परिषद् के सामने 'डॉक्टर' की उपाधि के लिए भेजा। इससे उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। उसी वर्ष उनको और उनके पति को इंग्लैंड के 'रायल इंस्टिटयूशन' में अपने प्रतिपाद्य विषय पर व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण मिला। वह वहाँ

गयीं। उनके व्याखयान से लोग बहुत प्रभावित हुए। दोनों को राय सोसाइटी का 'डेवी पदक' दे कर सम्मानित किया गया। लगभग एक लाख वीस हजार रुपये का 'नोबेल पुरस्कार' उस वर्ष वेक्वेरल और उनमें विभाजित कर दिया गया। सन् १९०४ ई० में सोरबोन-विश्वविद्यालय में विशेष रूप से उन दम्पतियों के लिए एक विभाग खोला गया। जिस विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में वह एक दिन वोतल-साफ करने के काम पर नियुक्त हुई थीं, आज वह वहाँ की प्रधान थीं। वस्तुतः रेडियम के आविष्कार ने उनका सोया हुआ भाग्य जगा दिया था। पति और पत्नी बड़े प्रेम से इस प्रयोगशाला में काम करने लगे, किन्तु दो वर्ष पश्चात् १९ अप्रैल सन् १९०६ ई० को श्रीमती क्यूरी का जीवन-साथी चल बसा। वह अकेली रह गयीं।

श्रीमती क्यूरी को पति-वियोग से बहुत दुःख हुआ। उसकी विज्ञान पिपासा अभी शान्त नहीं हुई थी। गोद में दो सुन्दर बच्चे थे। भावी जीवन का निर्जन पथ सामने था। ऐसी दशा में उन्होंने अपना समय विज्ञान की पिपासा को शान्त करने में ही लगाया। वह दिन-रात प्रयोग शाला में रहती थीं और रेडियम पर प्रयोग किया करती थीं। सन् १९१० ई० में उन्होंने रेडियम का परमाणु-भार निकाला और सन् १९११ ई० में उन्हें पुनः 'नोबेल-पुरस्कार' पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वीडेन 'राय एकेडेमी' ने उन्हें 'एकेडेमीशियन' की पदवी देकर सम्मानित किया, पर फ्रांस की तत्कालीन सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसका कारण केवल यह बताया गया कि वह स्त्री थीं। इस घटना के थोड़े ही दिन पश्चात् सन् १९१४ ई० में महायुद्ध छिड़ गया। फ्रांस को विवश होकर एक रेडियम-संस्था का आयोजन करना पड़ा। श्रीमती क्यूरी उक्त संस्था की प्रधान नियुक्त की गयीं। इसके बाद सन् १९१९ ई० में वह अपने घर वापस चली गयीं। वहाँ वह रेडियो-शास्त्र पढ़ाने के लिए प्रोफेसर नियुक्त की गयीं। उसी समय उनके सम्मान में एक रेडियम का अस्पताल खोला गया। वह इस अस्पताल में भी काम करती थीं। ९ अक्तूबर सन् १९२६ ई० को उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री का विवाह फ्रेडरिक जूलियट के साथ किया। वह भी उनकी पुत्री की भाँति विज्ञान का बड़ा विद्वान् था।

श्रीमती क्यूरी विज्ञान-जगत् की अनुपम विभूति थीं। वह संसार की सर्वप्रथम महिला थीं, जिन्हें दो बार 'नोबेल पुरस्कार' मिला। जब तक वह अपने ध्येय तक नहीं पहुँची, तब तक वह सुख से नहीं सोयीं। उन्होंने अपनी पुत्रियों का पालन-पोषण भी वैज्ञानिक वातावरण में किया था। यही कारण था कि उनकी एक पुत्री ऐरिन जूलियट क्यूरी को सन् १९३५ में रसायन-शास्त्र पर 'नोबेल-पुरस्कार' मिला। दुर्भाग्यवश वह इस प्रसन्नता में भाग न ले सकीं। ४ जुलाई सन् १९३४ ई० को वह संसार से सदैव के लिए विदा हो गयीं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—अपेक्षा, प्रयोगशाला, प्रखर, रसायन, विभूति, स्वेच्छाचारिता, पति-परायण और प्रतिपाद्य।

(२) विपरीतार्थक बताइए—आनन्द और सावधानी।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) श्रीमती क्यूरी का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

(४) श्रीमती क्यूरी का नाम वैज्ञानिक जगत में, क्यों प्रसिद्ध है ?

(५) रेडियम क्या है ? इससे क्या लाभ हुए ?

(६) 'नोबेल पुरस्कार' क्या है ?

(७) श्रीमती क्यूरी की राष्ट्रीय भावना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(८) अन्तिम अनुच्छेद का सारान्श लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(९) विशेषण बनाइए—विज्ञान, रसायन, प्रयोग और संसार।

(१०) सन्धि-विग्रह कीजिए—अत्यधिक, अतएव और प्रत्येक।

५—रचना-सम्बन्धी

(११) श्रीमती क्यूरी का जीवन-परिचय संक्षेप में लिखिए।

: २४ :

चीन की दीवार

[संसार में जितनी अद्‌भुत वस्तुएँ हैं उनमें चीन की दीवार का प्रमुख स्थान है। प्रस्तुत पाठ में इसी दीवार का मनोरञ्जक वर्णन किया गया है। यह अपने ढङ्ग की अनोखी दीवार है। इसे देखने से इसके बनानेवालों के परिश्रम, उनके धैर्य एवं अध्यवसाय का पता चलता है। इसके साथ ही चीन के प्राचीन इतिहास से भी हम परिचित हो जाते हैं। चीन हमारा पड़ोसी है। उसके साथ अत्यन्त प्राचीन काल से हमारा सम्बन्ध रहा है।]

अतीत के युग ने अपनी उस स्थिति में, जब कला और सभ्यता घुटनों पर चलना सीख रही थी, ऐसी वस्तुओं का निर्माण किया था जिन्हें देखकर आधुनिक मानव विस्मित हो जाता है। चीन की दीवार एक ऐसी ही रहस्यमयी रचना है। यह चीनी सम्राटों की महत्त्वाकांक्षा का दिग्दर्शन कराती है। इसकी विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि हम चन्द्रलोक से अपनी पृथ्वी पर दृष्टिपात करें और मनुष्य-कृत रचनाओं को खोजें तो कदाचित् न्यूयार्क की गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ सामान्य दृष्टि के क्षेत्र में न आयेंगी, केवल चीन की दीवार ही अपने टेढ़े-मेढ़े स्वरूप में दृष्टिगोचर होगी। सन् १७९० में एक वैज्ञानिक ने अनुमान लगाया था कि इस दीवार के निर्माण में जितने चूने और पत्थर का उपयोग किया गया है—यह इंग्लैंड-स्काटलैंड के समस्त भवनों और प्रासादों के निर्माण के लिए यथेष्ट ही नहीं, वरन् अधिक होगा। इस चूने-पत्थर से भूमध्य-रेखा के समानान्तर एक आठ फुट ऊँची और तीन फुट मोटी दीवार पृथ्वी की परिधि पर बनायी जा सकती है। इसी प्रकार एक इंजीनियर ने गणना करके बताया था कि इस दीवार के निर्माण में जितने श्रम का उपयोग हुआ है, उतने श्रम से अमेरिका के

चीन की दीवार
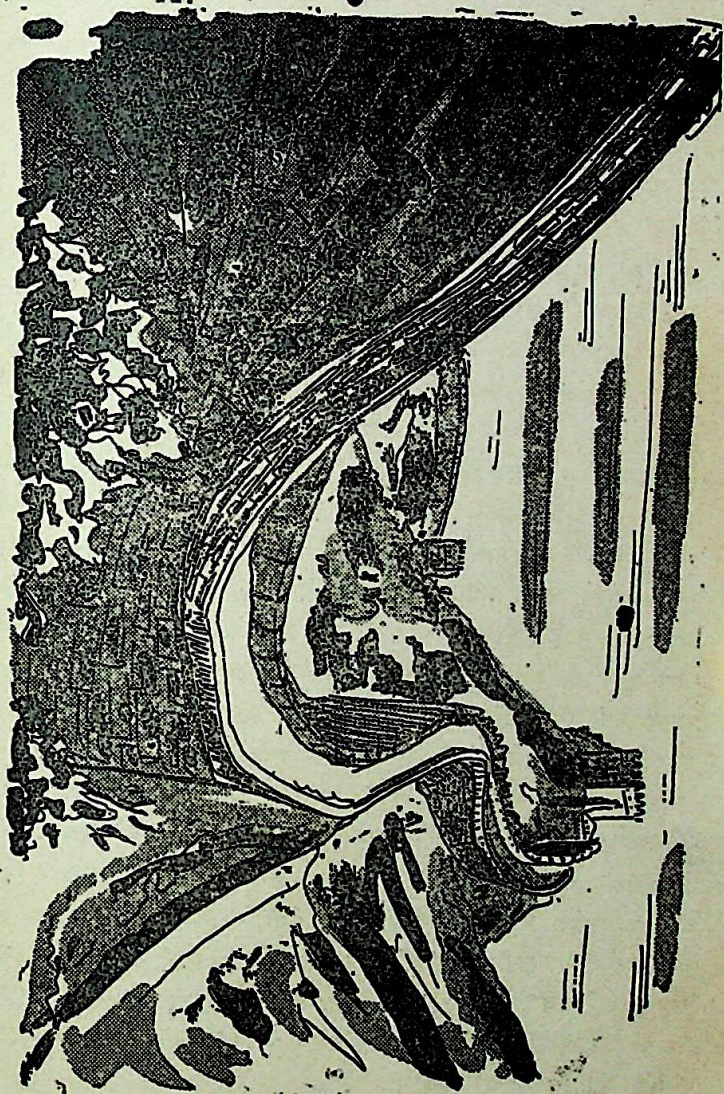
समस्त रेलों, सड़कों, नहरों और अनेक नगरों का निर्माण किया जा सकता था। चीन के एक छोर से आरम्भ होकर पश्चिम के पहाड़ों में मीलों बढ़ती हुई यह दीवार पामीर के दुर्गम पठारों में समाप्त हो गयी है। एक सरल और सीधी रेखा में इसकी लम्बाई ११७५ मील है। यथार्थ में समस्त वक्रताओं, शाखाओं और दरवाजों को मिलाकर इसकी लम्बाई २५०० मील है।

रक्त, पसीने और आँसुओं की पृष्ठभूमि पर इस दीवार के निर्माण की एक कहानी है। आज से लगभग २३०० वर्ष पूर्व, जब 'चाऊ' राजवंश का पतन होने पर महान् चीन विभिन्न प्रदेशों में विभाजित हो रहा था तब एक नर्तकी का चिनसिंग हांक नामक १३ वर्षीय पुत्र, शान्सी नामक प्रदेश में, अपने पिता की राजगद्दी पर आसीन हुआ। सात वर्ष के अल्पकाल में ही उस बालक राजा ने अपने प्रदेश का विस्तार कर चीनी साम्राज्य को पुनर्जीवित किया। उसके राजभवन में हजारों सुसज्जित कमरे थे।

साम्राज्य के निर्माण के कुछ ही समय पश्चात् सम्राट् चिन् को आकाशवाणी द्वारा विदित हुआ कि उसकी मृत्यु 'हू' अथवा उत्तर की वर्बर जातियों द्वारा होगी। उस समय यह असम्भव भी न था। उत्तर की वर्बर जातियों के आक्रमण अत्यन्त आकस्मिक और निष्ठुर होते थे। उत्तर की सीमा को अवरुद्ध करना असम्भव था। वहाँ एक ऐसे अवरोध की आवश्यकता थी, जिसे किसी आक्रमणकारी के घुड़सवार भी पार न कर सकें। एक ऊँची और लम्बी दीवार के निर्माण द्वारा ही यह सम्भव हो सकता था। सम्राट् की सुरक्षा के लिए योजना को मूर्तिमान करना आवश्यक था। साम्राज्य के प्रायः समस्त योग्य व्यक्तियों को काम पर लगाया गया। वे विद्यार्थी और बुद्धिजीवी, जिनके हाथ कलम चलाने के सिवा अन्य किसी काम के लिए अभ्यस्त न थे, भारी-भारी पत्थर उठाने के लिए विवश किये गये। अनिच्छुक व्यक्तियों को कोड़े की मार से विवश किया और जिन्होंने प्रतिरोध किया, उन्हें दीवार की नींव में पाटकर जीवित समाधि दे दी गयी।

इस तरह दीवार का निर्माण प्रारम्भ हुआ। पहले तो २५ फुट के समानान्तर पर नीवों के लिए दो खाइयाँ खोदी गयीं, फिर इन नीवों पर ईंट और पत्थर द्वारा २० फुट ऊँची दीवारें उठायी गयीं। बीच में २५ फुट चौड़े अन्तर को मिट्टी, पत्थर और चूने द्वारा भरा गया। पर्वतों पर कोड़ों की मार के नीचे विवश श्रमिकों को भारी-भारी पत्थर खींचने पड़ते थे। उन्हें थोड़ा खाना और पहनने के लिए चीथड़ा दिया जाता था। ऐसी परिस्थिति में उनका शरीर साथ न दे सका। अपने प्रियजनों से बिछुड़ कर सुदूर देश में असंख्य अभागे मिट्टी खोदते-खोदते स्वयं मिट्टी में सो गये।

इस तरह न जाने कितनी बार उदय और अस्त होते हुए सूर्य ने अभागे मानवों के रक्त, पसीने और आँसुओं के गारे से प्राचीर का निर्माण होते हुए देखा! समय बीतता गया और दीवार बढ़ती गयी। उत्तुङ्ग शिखर, दुर्गम घाटियाँ, भयानक वक्रताएँ और वेगपूर्ण नदी-नाले दीवार की प्रगति को न रोक सके। अन्त में तिब्बत के पठार को छूती हुई यह दीवार समाप्त की गयी। दीवार कितने समय में बन कर तैयार हुई, इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। एक इतिहासवेत्ता के अनुसार कम से कम १८ साल का समय इसके निर्माण में व्यतीत हुआ था।

दीवार के निर्माण के साथ ही उसमें खण्ड किये गये थे। प्रत्येक खण्ड में सैनिक-टुकड़ियाँ नियुक्त कर दी गयी थीं। दीवार में बने हुए बुर्जों पर नियुक्त प्रहरी धनुष-बाण लिये सदैव सजग रहते थे। इस तरह प्रति-मील की सुरक्षा के लिए ६ सैनिक उत्तरदायी थे। अवकाश के समय वे सैनिक दीवार के उत्तर, मैदान में खेती करते और जीवन बिताते थे।

आज के महान् युग में इस दीवार का सैनिक महत्त्व अधिक नहीं है, फिर भी जिस उद्देश्य से सम्राट् चिन् ने इस दीवार का निर्माण किया था, वह उद्देश्य सफल हुआ। चीन बदल गया, पर अतीत की यह स्मृति अपनी महानता को अक्षुण्ण रख कर उन महान् सम्राटों की महत्त्वाकांक्षा और उस युग के कौशल का प्रतिनिधित्व करती हुई अब भी खड़ी है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए---अतीत, विस्मित, रहस्यमयी, महत्त्वाकांक्षा, मान, यथार्थ, आकस्मिक, अवरोध, प्रहरी और विवश।

(२) विपरीतार्थक बताइए---निर्माण, अस्त, और उत्तरदायी।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) चीन की दीवार कब और क्यों बनायी गयी ?

(४) चीन की दीवार की गणना संसार की अद्‌भुत वस्तुओं में की जाती है ?

(५) चीन की दीवार का वर्णन कीजिए ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) भावार्थ लिखिए

[अ] इस प्रकार....व्यतीत हुआ था।

[ब] आज के महान् युग में...अब भी खड़ी है।

(७) 'अपने प्रियजनों से बिछुड़ कर सुदूर देश में असंख्य अभागे खोदते-खोदते स्वयं मिट्‌टी में सो गये'---इस वाक्य का स्पष्ट कीजिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) विशेषण बताइए---सेना, उद्‌देश्य, आश्चर्य, और रहस्य।

(९) भाववाचक संज्ञा बनाइए---व्यक्ति, मनुष्य और मानव।

(१०) व्याकरण से क्या हैं ? अनुमान, विस्मित और गगनचुम्बी।

(११) चीन की दीवार का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

(१२) मुहावरों का प्रयोग कीजिए :--

मिट्‌टी में सो जाना, अनुमान लगाना, काम पर लगा

--:०:--

: २५ :

वसन्त की शोभा

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

[श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म सं० १९६५ में विहार के मुङ्गेर जिलान्तर्गत सिमरिया ग्राम में हुआ था। सं० १९८९ में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० पास किया। वह अपने विद्यार्थी-जीवन से ही कविता-प्रेमी हैं और तब से बराबर कविताएँ लिखते रहते हैं। उन्होंने हिन्दी-कविता की राष्ट्रीय परम्परा को नया जीवन दिया है। उनका साहित्यिक जीवन अत्यन्त सफल है। उन्होंने कई कविता-पुस्तकें लिखी हैं। प्रकृति से उन्हें बहुत प्रेम है। प्रस्तुत रचना में उन्होंने वसन्त की शोभा की पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय भावों का वर्णन किया है। इसकी भाषा सरल, सुवोध और प्रवाहपूर्ण है।]
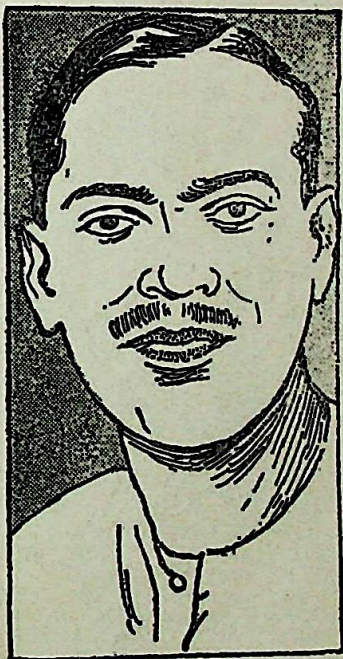
प्रात जगाता शिशु वसन्त को
जब गुलाब दे - दे ताली।
तितली बनी देव की कविता
वन - वन उड़ती मतवाली ॥ १ ॥

सुन्दरता को जगी देख कर
जी करता मैं भी कुछ गाऊँ ।
मैं भी आज कृति - पूजन में
निज कविता के दीप जलाऊँ ।। २ ।।

ठोकर मार भाग्य को फोड़ूँ
जड़ जीवन तज कर उड़ जाऊँ ।
उतरी कभी न भू पर जो छवि,
जग को उसका रूप दिखाऊँ ।। ३ ।।

स्वप्न बीज जो कुछ सुन्दर हो,
उसे सत्य में व्याप्त करूँ
और सत्य तनु के कुत्सित मल
का अस्तित्व समाप्त करूँ ।। ४ ।।

कलम उठी कविता लिखने को,
अन्तस्तल में ज्वार उठा रे !
सहसा नाम पकड़ कायर का,
पश्चिम - पवन पुकार उठा रे ।। ५ ।।

देखा, शून्य कुँवर का गढ़ है,
झाँसी की वह शान नहीं है।
दुर्गादास, प्रताप बली का
प्यारा राजस्थान नहीं है॥ ६ ॥

जलती नहीं चिता जौहर की,
मुट्ठी में बलिदान नहीं है।
टेढ़ी मूँछ किये राणा बन
फिरना अब आसान नहीं है॥ ७ ॥

समय माँगता, मूल्य मुक्ति का,
देगा कौन माँस की बोटी ?
पर्वत पर आदर्श मिलेगा,
खायें चलो घास की रोटी॥ ८ ॥

चढ़े अश्व पर सेंक रहे जो,
रोटी नीचे कर भालों को।
खोज रहा मेवाड़ आज फिर
उन अल्हड़ बसे मतवालों को॥ ९ ॥

बात - बात पर बजती किर्चें,
जूझ मरे क्षत्रिय खेतों में।
जौहर की जलती चिनगारी
अब भी चमक रही रेतों में॥ १० ॥

जाग - जाग ओ थार, बता दे,
कण - कण चमक रहा क्यों तेरा ?
बता, ंच भर ठौर कहाँ वह,
जिस पर शोणित बहा न मेरा॥ ११ ॥

सुन्दरियों को सौंप अग्नि पर,
निकले समय - पुकारों पर।
बाल-वृद्ध और त ण विहँसते,
खेल गये तलवारों पर॥ १२ ॥

हाँ, वसन्त की सरस घड़ी है,
जी करता, मैं भी कुछ गाऊँ ।
कवि हूँ, आज प्रकृति - पूजन में,
निज कविता के दीप जलाऊँ ।। १२ ।।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए---शिशु, कुत्सित, अन्तस्तल, अश्व, शोणित, अस्थि और व्याप्त ।

(२) पर्यायवाची बताइए---वसन्त, शिशु और अन्तस्तल ।

(३) विपरीतार्थक बताइए---सुन्दरी, रुच और सरल ।

(४) कविता और काव्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

२—विषय-सम्बन्धी

(५) कुँवर, दुर्गादास और प्रताप कौन थे और किसलिए प्रसिद्ध हैं

(६) 'जौहर' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

(७) 'झाँसी को वह शान नहीं है'।'---में कवि किस घटना और सङ्केत कर रहा है।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(८) प्रथम छन्द में देव कवि के किस भाव की ओर सङ्केत कि गया है ?

(९) प्रस्तुत कविता में कवि ने अपने देश की किन ऐतिहासिक घटनाओं की ओर सङ्केत किया है और उनका वसन्त से सम्बन्ध है ?

४—रचना-सम्बन्धी

(१०) 'वसन्त की शोभा' के अन्तर्गत दिनकर जी की राष्ट्रीय भा को व्यक्त कीजिए ।

---:०:---

: २६ :

कैम्प-फायर की उपयोगिता

[प्रस्तुत लेख में बालचरों के आमोद-प्रमोद के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये गये हैं। इसलिए यह प्रत्येक बालचर के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बालचरों का क्या उद्देश्य होना चाहिए यह इससे स्पष्ट हो जाता है।]

बालचरों के लिए मनोरञ्जन भी आवश्यक है। उनके मनोरञ्जन के साधनों में कैम्प-फायर का प्रमुख स्थान है। 'कैम्प-फायर' अंग्रेजी शब्द है। इसका अर्थ स्काउट कैम्प अथवा पड़ाव की आग है। सन्ध्या के समय स्काउट जलती हुई अग्नि के चारों ओर एकत्र होकर भाँति-भाँति की जो लीलाएँ अपने मनोरञ्जन के लिए किया करते हैं, उन्हीं का नाम 'कैम्प फायर' है।

सबसे पहले हमें इस बात पर विचार करना है कि स्काउट इस कार्य के लिए अग्नि को ही क्यों पसन्द करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर समझने के लिए हमें अपने घरों की ओर ध्यान देना चाहिए। शीतकाल में सन्ध्या के समय वूढ़े दादा अपने छोटे-छोटे बाल-गोपालों के साथ अलाव के पास बैठकर भाँति-भाँति की कहानियां सुनाते हैं और इस कार के मनोरञ्जन द्वारा उनकी ज्ञान वृद्धि करते हैं। इसके साथ ही उनकी टूटी-फूटी भाषा में अधूरी बात-चीत सुनकर वे अपनी दिन भर की थकान भी मिटाते हैं। गाँव का चौधरी अथवा मुखिया भी इसी प्रकार अपनी थकान दूर करता है। थकान दूर करने के साथ-साथ किसी भाई पर आयी हुई विपत्ति को दूर करने की युक्तियां भी निश्चित होती जाती हैं। इससे उनकी भ्रातृ-भावना और भी दृढ़ हो जाती है।

स्काउट दिन भर दौड़-धूप, कूद-फाँद सम्बन्धी तरह-तरह के परिश्रम-साध्य काम किया करते हैं। शरीर परिश्रम से चूर-चूर हो जाता है।

कैम्प-फायर में बूढ़े दादा अथवा चौधरी का स्थान कैम्प-चीफ ग्रहण करता है। वह अपने अन्य भाइयों की दिन भर की थकान को दूर करते हुए उनकी ज्ञान-वृद्धि की सामग्री जुटाता है। तथा उसीके साथ उनमें भ्रातृ-भाव का बीजारोपण करता है। बस यही कैम्प-फायर का मूल उद्देश्य है और इसीलिए अग्नि जलाई जाती है। अग्नि की शुद्ध और आरोग्यवर्द्धक आँच से शरीर में रक्त का शुद्ध प्रवाह होता है, थके हुए रग-पुट्ठों की पीड़ा शान्त हो जाती है तथा कैम्प-स्थल का दूषित वायु और रोग-उत्पादक कीटाणु उसकी भभकती हुई लपटों में स्वाहा हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार अग्नि काष्ठ के एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े में प्रवेश करती है, उसी प्रकार अनुभवी और ज्ञानी स्काउट भाइयों का अनुभव एवं ज्ञान अन्य भाइयों तक पहुँचता है तथा उस अग्नि की जगमगाहट के सदृश उनके हृदय बन्धुत्व के प्रकाश से जगमगा उठते हैं। जगमगाहट भी ऐसी होती है कि उसे देख पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष, चमगादड़ और उल्लू की भाँति, अपना मुँह छिपाये-छिपाये फिरते हैं, पर कहीं छिपने को स्थान नहीं पाते।

अग्नि का महत्त्व एक दृष्टि से और भी है। स्काउट अनुभव प्राप्त करने के लिए अपनी जान हथेली पर रख कर बीहड़ वनों, दुर्गम पर्वतों, बाघ, भेड़ियों और रीछों के मुखों में कैम्प किया करते हैं। ऐसे स्थानों में उन पशुओं से आत्म-रक्षा करने के लिए अग्नि परम सहायक होती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि कैम्प-फायर का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन, ज्ञान-प्राप्ति और भ्रातृ-भाव को पुष्ट करना है। मनोरञ्जन का अर्थ जी बहलाना है। स्काउट दिन भर परिश्रम करते हैं। इससे उनका शरीर शिथिल हो जाता है, अतः उस थकान को दूर करने तथा नवीन उत्साह प्राप्त करने के लिए कैम्प-फायर का आयोजन आवश्यक है। कैम्प-फायर का समय बहुत लम्बा न होना चाहिए। इसके लिए एक अथवा दो घण्टे का समय पर्याप्त है। यदि लगातार कई घण्टे तक कैम्प-फायर होता रहेगा तो थकावट दूर होने के बदले और बढ़ेगी; सोने के समय में कमी होगी, जिससे दूसरे दिन शरीर में आलस्य बना रहेगा

और तब कैम्प-फायर का उद्देश्य नष्ट हो जायेगा। अतः बुद्धिमान स्काउट अपने कैम्प-फायर का कार्यक्रम घण्टे, डेढ़ घण्टे से ऊपर कभी नहीं होने देते।

कैम्प-फायर ज्ञान-प्राप्ति का साधन है। इस अवसर पर प्रत्येक स्काउट को कुछ न कुछ कहना ही पड़ता है। इससे उसकी लज्जा और झिझक जाती रहती है। फिर वे ही बालक बड़ी-बड़ी सभाओं में निर्भय होकर अपने मनोभावों को प्रकट करने लगते हैं। इस दृष्टि से कैम्प-फायर की उपयोगिता अत्यन्त सराहनीय है। पर एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए। बहुधा कुछ बालक पहले-पहल कैम्प-फायर में बोलते समय हिचकते अथवा वेढङ्गेपन से बातचीत करते हैं। ऐसे अवसर पर हमें हँस कर उनका साहस नहीं तोड़ देना चाहिए। स्काउट अपने से कम ज्ञानवाले भाई की हँसी नहीं उड़ाते; बल्कि बड़े प्रेम से उनकी कमी को दूर कर शीघ्र उसे अपना जैसा बना लेते हैं।

भ्रातृ-भाव की दृष्टि से कैम्प-फायर से बढ़कर दूसरी जगह कोई नहीं हो सकती। यहाँ सब स्काउट एक-दूसरे के भाई होते हैं। कैम्प-फायर अथवा स्काउट मास्टर बड़े भाई का स्थान ग्रहण कर, प्रेम से बातचीत करते हुए उनके कानों में, भ्रातृ-भाव का महामन्त्र फूँकते हैं। इसका उन पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। कैम्प-फायर में अपने किसी भाई की नकल उतारना भ्रातृ-भाव को नष्ट करना है। यदि किसी की नकल उता

ही जाय, तो उसका उद्देश्य केवल मनोरञ्जन ही होना चाहिए। हमें अप
आठवाँ नियम भली-भाँति याद रखना चाहिए और उससे किसी प्रक
विचलित नहीं होना चाहिए। हमें प्रत्येक दशा में प्रसन्नचित्त रह
चाहिए। हमें अपने में से उस कमी को शीघ्र दूर कर देना चाहि
जिसकी चेतावनी हमें ऊपर दी गयी है—अर्थात् भोंड़पन से किसी
नकल उतार कर उसका दिल नहीं दुखाना चाहिए। ऐसा करने से ह
अधिक बुद्धिमान कहलायेंगे।

एक और अत्यन्त आवश्यक बात है। हमारे देश में अनेक जाति
हैं। हमारा उनसे कोई सम्बन्ध न होना चाहिए, क्योंकि हम स्काउट है
स्काउट हमारा मं, स्काउट हमारी जाति और स्काउट ही हमारा कर्त
होना चाहिए। इसी प्रकार स्काउट का कैम्प-फायर भी 'स्काउट कैम्प-फाय
ही हो। स्काउटिंग का मुख्य उद्देश्य जनता को सफल नागरिक बनाना है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—युक्ति अभाव, बीजारोपण, पारस्परिक, पर्व
राशि, भ्रातृ-भाव और महामन्त्र।

(२) विपरीतार्थक बताइए—उत्पादक, ज्ञान और उत्साह।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) कैम्प फायर से क्या तात्पर्य है?

(४) कैम्प फायर में अग्नि का क्या महत्त्व है?

(५) कैम्प फायर से क्या लाभ होते हैं?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) 'कैम्प फायर ज्ञान प्राप्ति का साधन है'—इस कथन की व्या
कीजिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(७) व्याकरण से क्या है? थकावट, सहायक, जगमगाहट और बीह

(८) सन्धि विग्रह कीजिए—बीजारोपण निश्चित और निरुत्साह।

५—रचना-सम्बन्धी

(९) कैम्प फायर की उपयोगिता पर एक लेख लिखिए।

—:०:—

भाई का प्रेम

[यह एक एकाङ्की नाटक है। इसमें एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर भाई-भाई का प्रेम दिखाया गया है। इस घटना से हमें और भी कई शिक्षायें मिलती हैं। इसमें भीमसिंह का चरित्र प्रत्येक भाई के लिए अनुकरणीय है। ऐसे शिक्षाप्रद एकाङ्की पाठशाला के वार्षिक अथवा अन्य उत्सवों के अवसरों पर खेले जाते हैं। यह एकाङ्की भी आसानी से खेला जा सकता है। साधारण रङ्ग-मञ्च और साधारण वेश-भूषा में हम अपने प्राचीन इतिहास की शिक्षाप्रद घटनाओं को पुनः प्रदर्शित कर सकते हैं।]

पात्र

राणा राजसिंह—चित्तौड़ नरेश।
महारानी—राणा की पत्नी।
भीमसिंह—राणा का प्रथम जुड़वाँ पुत्र।
जयसिंह—राणा का द्वितीय जुड़वाँ पुत्र।

दृश्य १

स्थान—चित्तौड़ के रङ्गमहल का एक कमरा।
समय—दोपहर।

[कमरे की दीवारें चित्रों से सजी हुई हैं। पीछे की दीवार में ऊपर की ओर कुछ खिड़कियाँ हैं, जिनमें से होकर सूर्य की किरणें कमरे में आ रही हैं। कमरे की छत से झाड़-फानूस लटक रहे हैं और नीचे कालीन बिछा हुआ है। कालीन पर मसनदें लगी हैं। एक मसनद के साथ महारानी कुछ चिन्तित बैठी हैं। एक स्त्री पङ्खा झल रही है। अचानक राणा को अपनी ओर आते देख, महारानी खड़ी हो जाती हैं और उनका अभिवादन करती हैं। बाँदी का प्रस्थान।]

महारानी—(खड़ी होकर) चित्तौड़ नरेश की जय हो !

राणा राजसिंह—(बैठकर आश्चर्य से) महरानी आज मैं यह देख रहा हूँ ?

महारानी—(बैठते हुए) महाराज, मैं आपका मतलब नहीं समझी

राणा राजसिंह—मेरे कहने का मतलब यह है कि मैं जयसिंह गद्दी देने जा रहा हूँ। अब तुम्हारा पुत्र इस बड़े राज्य का मालिक और तुम राजमाता बनोगी। इसलिए तुमको प्रसन्न रहना चाहिए, तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखाएँ देख रहा हूँ।

महारानी—आप सच कहते हैं महाराज ! मैं इस प्रकार राज बनना नहीं चाहती।

राणा राजसिंह—इसका कारण ?

महारानी—महाराज ! आप स्वयं इसका कारण जानते हैं। मेरी चिन्ता का कारण आप अपने हृदय से पूछिए।

राणा राजसिंह—तो क्या तुम जयसिंह को इस राज्य का उत्तरा नहीं समझतीं ?

महारानी—नहीं।

राणा राजसिंह—क्यों ?

महारानी—इसलिए कि गद्दी पर बैठने का अधिकार भीमसिंह को

राणा राजसिंह—भीमसिंह और जयसिंह दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए ऐसी दशा में गद्दी देने का निर्णय मेरी इच्छा पर निर्भर है।

महारानी—महाराज ! आप भूल कर रहे हैं। भीमसिंह पहले हुआ है, इसलिए जयसिंह से वह बड़ा है। कुल की मर्यादा के भीमसिंह को ही गद्दी मिलनी चाहिए। भीमसिंह के रहते हुए जयसिंह गद्दी देना अन्याय होगा और इस अन्याय का फल होगा रक्तपात।

राणा राजसिंह—तुम्हारा अनुमान सत्य हो सकता है महारानी, मैं जयसिंह को अधिक चाहता हूँ।

महारानी—मेरे लिये भीम और जय दोनों समान हैं। मैं दोनों की माँ हूँ। दोनों से मुझे समान प्रेम है। दोनों मेरा आदर करते हैं। क्या भीम ने अपने किसी दुर्व्यवहार से आपको चोट पहुँचाई है?

राणा राजसिंह—नहीं, कभी नहीं।

महारानी—फिर भीम के साथ यह अन्याय क्यों?

राणा राजसिंह—प्रेम अन्धा होता है महारानी। क्या यह बात तुम नहीं जानतीं ?

महारानी—मैं यह जानते हुए भी चित्तौड़ का कल्याण चाहती हूँ और आपका प्रेम चित्तौड़ के कल्याण में बाधक हो रहा है। इसलिए मैं आँचल पसार कर चित्तौड़ के कल्याण की भिक्षा माँगती हूँ।

राणा राजसिंह—(चिन्तित होकर) तुम सच कहती हो महारानी! परन्तु......

महारानी—(आश्चर्य से) परन्तु क्या?

राणा राजसिंह—रक्तपात निश्चित है। मैं जयसिंह को वचन दे चुका हूँ और अब.....

महारानी—और अब प्रजा के कल्याण और मर्यादा की रक्षा के लिए आपको अपना वचन तोड़ना पड़ेगा।

राणा राजसिंह—महारानी! मैंने सचमुच भूल की। मेरे एकांगी प्रेम ने मुझे अन्धा बना दिया; परन्तु....

महारानी—परन्तु क्या? क्या आप अपना वचन नहीं तोड़ सकते?

राणा राजसिंह—महारानी! क्षत्रिय अपने वचन के पक्के होते हैं, परन्तु इस समय मेरे वचन के साथ कुल की मर्यादा का प्रश्न है, चित्तौड़ की प्रजा के कल्याण का प्रश्न है और सबसे बढ़ कर उस पुत्र के साथ अन्याय करने का प्रश्न है, जिसने कभी मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है। इसलिए मैं अपना वचन तोड़ कर क्षत्रिय-धर्म से गिरने का पाप सह सकता हूँ, परन्तु एक शर्त पर!

महारानी—महाराज! आपकी भूल मेरी भूल है; इसलिए मैं बिना जाने ही आपकी वह शर्त सहर्ष स्वीकार करती हूँ।

राणा राजसिंह—(खड़े हो कर) महारानी ! आज तुम ने मुझे एक अन्याय से बचा लिया, इसलिए.....!

महारानी—महाराज की जय हो !

[पर्दा गिरता है]

दृश्य २

स्थान—राणा का शयन-गृह ।

समय—दो बजे रात ।

[चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। राणा के शयन-गृह में मद्धिम प्रकाश है। राणा अपने पलङ्ग के पास चिन्ता-मग्न खड़े हैं और उनके सामने भीमसिंह हैं ।]

राणा राजसिंह—मैं तुम्हारे क्षोभ का कारण समझता हूँ भीमसिंह। तुम्हारे साथ मैंने अन्याय किया है और अन्याय के प्रायश्चित्त के लिए ही मैंने तुम्हें इतनी रात गये बुलाया है ।

भीमसिंह—(आश्चर्य से) परन्तु क्या पिता जी ?

राणा राजसिंह—परन्तु जयसिंह को मैं गद्दी देने का वचन दे चुका हूँ। ऐसी दशा में रक्तपात होना निश्चित है। मैं यह नहीं चाहता, इसलिए (तलवार निकाल कर) यह लो मेरी तलवार और अभी जयसिंह का अन्त...........!

भीमसिंह—(भौंचक्का हो कर) यह क्या पिताजी ! क्या आप स्वप्न देख रहे हैं ? आप चेतनाशून्य हो गये हैं ? मैं नहीं समझता पिताजी आप क्या सोच रहे हैं !

राणा राजसिंह—बेटा भीम ! तुमने सदैव मेरी आज्ञा का पालन किया है, आज भी तुम मेरी आज्ञा का पालन करोगे, ऐसी मुझे आशा है। लो, यह तलवार लो और जयसिंह के जीवन का इसी दम अन्त कर दो। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। उसके मरते ही तुम्हारे पथ का कण्टक दूर हो जायेगा और तुम चित्तौड़ के राणा बनोगे। लो, और मेरी आज्ञा नहीं, एक अन्यायी पिता की प्रार्थना स्वीकार करो।

भीमसिंह—पिताजी, मैं यह काम नहीं कर सकता ।

राणा राजसिंह—(आश्चर्य से) क्यों !

भीमसिंह—इसलिए कि मैं चित्तौड़ की गद्दी पर बैठना ही नहीं चाहता।

राणा राजसिंह—नहीं बेटा, ऐसा नहीं हो सकता। तुम बड़े हो। गद्दी बड़े पुत्र को ही मिलनी चाहिए थी, परन्तु मेरे एकांगी प्रेम ने मुझे अन्धा बना दिया और मैंने तुम्हारे प्रति अन्याय किया। इस अन्याय के प्रायश्चित्त का अब केवल एक साधन है और वह है जयसिंह का वध। जयसिंह के वध से हजारों की जान बच जायेगी और न्याय का समर्थन होगा। इसलिए कहना मानो। मैं शुद्ध हृदय से तुम्हें जयसिंह के....!

भीमसिंह—और एक क्षत्रिय के वचन तोड़ने के अपराध का दण्ड ?
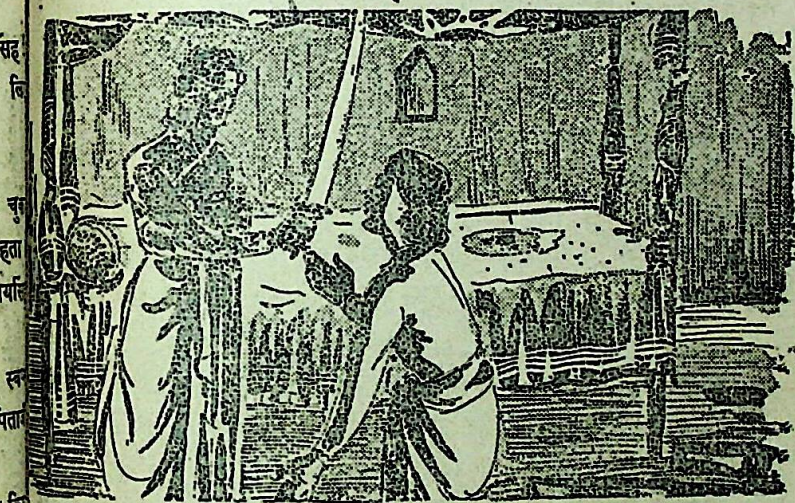
राणा राजसिंह—जो दण्ड तुम निश्चित करो, वह मुझे सहर्ष स्वीकार है।

भीमसिंह—तो जयसिंह के वध करने और वचन तोड़नेवाले क्षत्रिय को दण्ड देने का अधिकार केवल मुझको प्राप्त है ?

राणा राजसिंह—हाँ !

भीमसिंह—आपका यही अन्तिम निर्णय है ?

राणा राजसिंह—हाँ।

भीमसिंह—तो इसी तलवार से आप अपने पुत्र भीमसिंह का
कीजिए और....!

राणा राजसिंह—यह कैसे हो सकता है बेटा ? मैं अपने ही हाथों
अपने पुत्र का वध करूँ ? असम्भव है।

भीमसिंह—पिताजी ! जब आप अपने हाथों अपने पुत्र का
नहीं कर सकते, तो मैं अपने हाथों से उस भाई का वध कैसे कर सकता
हूँ, जिसके साथ मैंने माता के गर्भ में नौ मास विताये हैं। मैं तो उसका
शरीर अपना और अपना शरीर उसका समझता हूँ। आप अपनी तलवार
को जयसिंह के रक्त से रंगने का विचार न करें। मुझे राज्य नहीं चाहिए
जयसिंह...जयसिंह...(जयसिंह का प्रवेश) तुम्हारी नींद खुल गयी जयसिंह

जयसिंह—हाँ, मैं एक भयङ्कर स्वप्न देख कर चौंक पड़ा !

भीमसिंह—उस स्वप्न का अन्त ?

जयसिंह—कोई मेरा वध करने के...!

भीमसिंह—तुम सच कहते हो, परन्तु मेरे जीते जी कोई तुम्हारा
बाल बाँका नहीं कर सकता। तुम निडर होकर यह राज्य अपने अधिकार
में ले लो। मैं स्वप्न में भी इसे लेने की कामना नहीं करूँगा। यही मेरा
दृढ़ निश्चय है। भाई से बढ़ कर यह राज्य नहीं हो सकता।

राणा राजसिंह—धन्य हो पुत्र भीम, धन्य हो ! तुम्हारे ऐसे पुत्रों
ही माता को अभिमान होता है।

[दोनों भाई गले मिलते हैं और पिता के चरणों पर गिरते हैं।]

[पर्दा गिरता है]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—नरेश, अभिवादन, उत्तराधिकारी, मर्यादा,
पात, शिक्षा, उल्लंघन और दृढ़।

(२) पर्यायवाची बताइए—भाई, नरेश और पुत्र।

२–विषय-सम्बन्धी

(३) राणा राजसिंह कौन थे ?

(४) महारानी क्या चाहती थीं और क्यों ?

(५) राणा राजसिंह क्या चाहते थे और क्यों ?

(६) भीमसिंह ने अपना अधिकार क्यों त्याग दिया ?

३–भावार्थ-सम्बन्धी

(७) सन्दर्भ सहित भावार्थ लिखिए :—

[अ] क्षत्रिय अपने......परन्तु एक शर्त पर !

[ब] तुम सच कहते हो....नहीं हो सकता।

४–व्याकरण-सम्बन्धी

(८) कारक के भेद उदाहरण सहित बताइए।

(९) 'आप अपनी तलवार को जयसिंह के रक्त में रंगने का विचार न करें।'—इस वाक्य का विश्लेषण कीजिए।

५–रचना-सम्बन्धी

(१०) पाँच मुहावरे छाँटिए और उनकी सहायता से वाक्य बनाइए।

(११) इस एकांकी का कथानक अपनी भाषा में लिखिए।

—:०:—

बापू स्तुति

पं० उदयशङ्कर भट्ट

[पं० उदयशङ्कर भट्ट हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार और कवि हैं उनका जन्म श्रावण, शुक्ल ५, सं० १९५४ को इटावा में हुआ था। वे औदीच्य ब्राह्मण हैं। साहित्य-सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य है। उन्होंने कई नाटक लिखे हैं। अपने नाटकों के लिए ही वह अधिक प्रसिद्ध हैं परन्तु वह हृदय से कवि हैं। उनके नाटकों में भी उनका कवित्व फूट पड़ा है। प्रस्तुत कविता में उन्होंने गान्धीजी का यशोगान किया है।]

हे नव मानव, हे ज्योति-पुंज,
हे पावन भ-सौरभ - निकुंज !
हे सत्यमूर्ति, हे दयाधाम,
हे हिमकीरीटिनी-सुत ललाम !

जो वर्ष सहस्रावधि आकुल पीड़ित-विजड़ित, परतन्त्र देश;
उसको तुमने कर दिया मुक्त, उसको तुमने कर अमर वेश।
अपने प्राणों का रस देकर जो किया अंकुरित वट महान,
स्वातन्त्र्य शक्ति-बल का प्रतीक, पल्लव-पुष्पों से प्राणवान।
तुम महायुद्ध के सेनानी, जाग्रत जीवन के नव वसन्त,
ऊर्जस्व दूत, चिर शाश्वत गति, भारत के महिमावान सन्त !
तुमको पा कर युग धन्य हुआ, तुमको पा देश अजेय हुआ,
सुस्वर्गिक वृहदारण्यदेश, विज्ञेय हुआ, अध्येय हुआ।

तुमने संस्कृति के क्षीण गगन पर एक अमिट आभा भर दी,
तुमने पातों के पुञ्जों पर विस्फोटमयी लावा धर दी,
हम आदि-काल के मानव के दोषों से अभी न मुक्त हुए;
हम निज पापों की तिमिरावृत्त छाया से तारित सक्त हुए।

यह पंच भूतमय नश्वर तन नश्वर भूतों में लीन हुआ,
पर क्या प्राणों को झंकृत कर देनेवाला स्वर दीन हुआ?
तुम मानवता के देव, तुम्हारी वाणी जन-जन-ज्ञान-बनी,
तुम मानवता के प्रकट रूप, आदेश हमारा मान बनी।

तुमने आजीवन जीवन में पापों से, छल से युद्ध किया,
तुमने आजीवन जीवन में अभिशापों को अवरुद्ध किया।
था युद्ध तुम्हारा सेनानी भय से, स्वार्थों से आजीवन,
तुम प्रेम-मूर्ति, तुम दयामूर्ति, तुम विश्वमूर्ति, मानव-स्पन्दन।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—ज्योति-पुञ्ज, भू-सौरभ-निकुञ्ज, हिमकिरीटिनी-सु पल्लव, विज्ञेय, अध्येय, ऊर्जस्व, सुस्वर्गिक, वृहदारण्य, आदे और स्पन्दन ।

(२) पर्यायवाची बताइए—तिमिर, पाप, और युद्ध ।

(३) विपरीतार्थक बताइए—अवरुद्ध, स्वार्थ, भय और दया ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) गान्धीजी को 'भारत के महिमावान सन्त' क्यों कहा गया है ?

(५) विश्व के महापुरुषों में गान्धीजी का क्या स्थान है ?

(६) गान्धीजी के चरित्र की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ बताइए।

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) 'तुमने संस्कृति के क्षीण गगन पर एक अमिट आभा भर दी'- कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिए ।

४—रचना-सम्बन्धी

(८) 'गान्धीजी को जाग्रत जीवन के नव वसन्त' क्यों कहा गया है

(९) पाठ के आधार पर गान्धीजी के चरित्र के सम्बन्ध में ए निबन्ध लिखिए ।

---:o:---

: २८ :

आत्म-रक्षा

[हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं। आज से दस वर्ष पहले हम एक विदेशी शासन के अन्तर्गत रहते थे। उस समय हमारी रक्षा का भार सीधे हम पर नहीं था। जो हमारे स्वामी थे वही हमारी रक्षा करते थे। परन्तु अब वह परिस्थिति नहीं है। आज हम स्वयं अपने स्वामी हैं। इसलिए हमारी रक्षा का पूरा दायित्व हम पर ही है। हम अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं---यही इस पाठ का मन्तव्य है।]

आत्म-रक्षा शब्द सुनते ही हर एक का ध्यान अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा की ओर जाता है। किसी देश की रक्षा से तात्पर्य बाहरी शत्रुओं से उसकी सीमाओं की रक्षा करना होता है। १५ अगस्त, १९४७ ई० से पहले हमारा देश दूसरों के अधीन था, अतः हमने कभी अपने देश की रक्षा के प्रश्न पर सोचने की आवश्यकता नहीं समझी। लेकिन जैसे ही देश स्वतन्त्र हुआ, हमको अपने देश की सीमाओं की रक्षा करने की चिन्ता हुई। हमारे राष्ट्र-नायकों ने अपनी सेनाओं को सुसंगठित किया और अपनी हवाई, नाविक, सशस्त्र सेना को दृढ़ तथा आधुनिक काल के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करने का प्रयत्न किया। आज के भारत को अपनी सेना पर अभिमान है। पिछले दो महायुद्धों में भी भारतीय सेना ने अपने लिए प्रसिद्धि प्राप्त की और संसार की बड़ी और बहादुर रण-कुशल सेनाओं में उसकी गिनती थी। पिछली लड़ाई में हमारी नाविक सेना ने अटलांटिक, भूमध्यसागर और हिन्द-महासागर के युद्धों में अपने जौहर दिखलाये थे। हमारे हवाई बेड़े ने भी बर्मा के युद्ध में ख्याति प्राप्त की थी और उसे वहाँ की 'चौदहवीं सेना' की आँख और कान कहा जाता था।

जब स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही देश का विभाजन भी हुआ, अशान्ति की एक लहर फैलने लगी। उस समय हमारी सेना ने बहादुरी और ठंढे दिमाग से काम लिया। एक ओर तो उसने उन का मुकाबला किया, जो देश में अशान्ति फैलाना चाहते थे, दूसरी ऐसे लाखों भाइयों की सहायता की, जो साम्प्रदायिक दङ्गों के फलस्व बेघर-बार हो गये थे और मुसीबत में फँस गये थे। हमारे हवाई स्थान-स्थान पर लोगों को खाना पहुँचाया, जहाँ के लिए रास्ता वन्द विस्थापित भाइयों को भोजन और आश्रय देने, बीमार और घायलों सेवा करने में भारतीय सेना ने एक अद्‌भुत मानवीय भावना का परि दिया। देश के विभाजन के बाद भारतीय सेना पूर्ण रूप से संगठित न होने पायी थी कि उसको कश्मीर के मोर्चे पर जाना पड़ा। कश्मी की सुन्दर घाटियों पर आक्रमण करने के लिए पाकिस्तान ने कुछ लु और गुण्डों को जमा कर अपनी पुलिस और फौज से उनकी सहायता
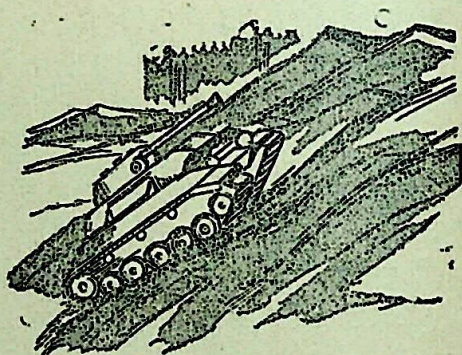
भारतीय टैंक

उन्होंने वहाँ भी भोली-भाली जनता को लूटना आरम्भ किया। भार सेना ने कश्मीर में जाकर उन लुटेरों और गुण्डों को मार भगाया वहाँ के निवासियों के हृदय पर विजय पायी। हमारे सैनिकों में भार संस्कृति का नैतिक बल कूट-कूट कर भरा है; अतएव हमारे सैनिकों संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गणना की जाती है। ऐसे वीर

को यदि हम उचित आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित कर दें, तो उनके अजेय होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। कश्मीर-युद्ध में ऐसा ही हुआ। जब जोजीला की घाटी में, जो १२,००० फुट ऊँचे अगम पर्वत-माला के बीच में है, हमारे सैनिक टैंक चढ़ा ले गये और शत्रु को उसके सुदृढ़ मोर्चे से खदेड़ दिया, तो अन्य देशों के विशेषज्ञों ने इस बात पर आसानी से विश्वास नहीं किया कि इतनी ऊँचाई पर टैंक कैसे ले जाये जा सकते हैं। संसार के युद्ध-इतिहास में यह एक अनोखी बात हुई। यही नहीं, हमारी वायुसेना के कार्य भी आश्चर्य-जनक हैं। बीस-बाइस हजार फुट की ऊँचाई पर भीषण ठंढ में सैनिकों तक रसद पहुँचाने का कार्य निराला ही था। लेह की बर्फीली चट्टानों पर बड़े-बड़े हवाई जहाजों को उतार देना असीम साहस का परिचायक था। कश्मीर की जनता के साथ घुल-मिल जाना, स्वयं भूखे रह कर अपनी रसद वहाँ की जनता को देकर उनकी भूख मिटाना, घायलों की सेवा करना, बिछुड़े हुओं को मिलाना, लुटेरों और हत्यारों से रक्षा करना—ये सब हमारी सेना के नित्य के कार्य रहे हैं।

हमारे राष्ट्रनायक अपनी सेना संगठित करके ही सन्तुष्ट नहीं रहे। उन्होंने देश की साधारण जनता को भी हर सम्भव युद्ध और खतरे से बचाने के लिए और आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए तैयारी करने का प्रबन्ध किया है। इस उद्देश्य को लेकर ही 'भारतीय प्रादेशिक सेना' और 'नेशनल कैडेट-कोर' की स्थापना हुई है। भारतीय प्रादेशिक सेना में देश के वे सभी स्वस्थ नवयुवक सम्मिलित हो सकेंगे, जो युद्ध विद्या सीखना चाहते हों। सेना के इस अङ्ग में सम्मिलित होने के लिए यह जरूरी न होगा कि वे हर समय सेना का कार्य ही करते रहें। साल भर में कुछ हफ्ते उन्हें सेना-कार्य के लिए देने होंगे और बाकी समय में वे अपना निजी कार्य करते रहेंगे। 'नेशनल कैडेट कोर' के द्वारा स्कूल और कालेज के छात्रों को यह अवसर दिया गया है कि वे भी अपने को सैनिक होने के योग्य बनाने का प्रयत्न कर सकें और आवश्यकता पड़ने पर देश के लिए अपनी सेवायें अर्पित करें। यदि हम यह चाहते

हैं कि हमारी सेनायें अपने देश की सीमाओं पर दृढ़तापूर्वक मोर्चा बनाये रखें और दुश्मनों के दिल को दहलाती रहें, तो हमारे लिये भी यह आवश्यक है कि देश के अन्दर पूर्ण रूप से अमन-चैन रहे; देश के अन्दर चोर, लुटेरों और डाकुओं का भय न रहे। देश का प्रत्येक वर्ग अपना-अपना काम करता चला जाय और उसके कार्य में कोई विघ्न-बाधा न डाल सके। अपने देश में शान्ति कायम रखने के लिए सेना जितनी कम लगायी जाये उतना ही अच्छा है। हमारे राज्य की सरकार ने 'प्रान्तीय रक्षक-दल' की स्थापना करके इस कार्य को बहुत हद तक पूरा किया है।

देश की रक्षा के लिए जहाँ सैनिक-शक्ति बढ़ाने तथा उसे स्थायी रखने के लिए आर्थिक स्थिति को सुधारने की आवश्यकता है, वहाँ देश के नैतिक स्तर को भी ऊँचा करना बहुत आवश्यक है। किसी भी देश की सैनिक-शक्ति कितनी ही बढ़ी-चढ़ी हो, उसके पास धन भी अपार हो, फिर भी यदि उस देश का नैतिक स्तर ऊँचा नहीं है, तो वह देश शीघ्र ही पतन की ओर झुकने लगता है। इसके विपरीत यदि किसी देश के रहनेवालों का नैतिक स्तर ऊँचा हो, उसके पास धन की कमी हो और सैनिक शक्ति भी उसकी अधिक न हो, तब भी वह अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करते रहते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—सुसंगठित, नाविक, साम्प्रदायिक, रसद, अमानवीय, विस्थापित, भोषण, परिचायक और प्रादेशिक।

(२) विपरीतार्थक बताइए—मानवीय, आधुनिक, और आसानी।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) अटलांटिक, भूमध्य-सागर और हिन्द-महासागर कहाँ हैं ?

(४) 'नेशनल कैडेट कोर' से क्या तात्पर्य है ?

(५) 'टैंक' किसे कहते हैं ?
(६) 'विभाजन' से आप क्या समझते हैं ?
(७) विभाजन के पश्चात् हमारी सेना ने क्या महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ?
(८) हम अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(९) अन्तिम अनुच्छेद का भावार्थ लिखिए ।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(१०) विशेषण बनाइए—मानव, भारत, सेना, विश्वास, समुद्र, सागर और दिन ।

५—रचना-सम्बन्धी

(११) "हम अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं ?"—इस विषय पर एक निबन्ध लिखिए ।
(१२) मुहावरों का प्रयोग कीजिए :—
मोर्चा लेना, बढ़ो-चढ़ी होना, खदेड़ देना और मार भगाना ।

---: o :---

: ३० :

कश्मीर की शिल्प-कला

[प्रत्येक देश का आर्थिक उत्थान उस की शिल्प-कला पर आधारित रहता है। शिल्प-कला की उन्नति से जीवन स्तर ऊँचा हो जाता है। हमारे देश में शिल्प-कला की जैसी उन्नति होनी चाहिए, अभी नहीं हो रही है। यही कारण है कि हमारी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। हमें चाहिए कि हम शिल्प-कला का प्रचार करें और अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का अधिक से अधिक प्रयोग करें? शिल्प-कला की दृष्टि से कश्मीर अग्रगण्य है। प्रस्तुत पाठ में वहाँ की शिल्प-कला का विवरण दिया गया है। हम इस पाठ से पूरा लाभ उठा सकते हैं।]

प्राचीन काल से ही कश्मीर अपनी कलात्मक वस्तुओं और हस्तशिल्पों के लिए सुविख्यात है। कश्मीरी शिल्पकार, कागज के सड़ाये गूदे से भाँति-भाँति की मनोरम वस्तुएँ तैयार करता और अखरोट के साधारण खुरदरे कुन्दों को अपने अनुपम हस्त-कौशल के द्वारा सुन्दर एवं उपयोगी वस्तुओं में परिणत कर देता है। यदि आप कश्मीर में 'पेपरमाशी' या काठ की नक्काशी का काम करनेवाले किसी शिल्पकार की दुकान में प्रवेश करें, तो आप उसकी कलात्मक कृतियों को देखते ही रह जायेंगे और आपको आश्चर्य होगा कि किस प्रकार ये सीधे-सादे लोग अपनी निर्धनता के होने पर भी प्राकृतिक छटाओं से परिपूर्ण वातावरण के भाव से उत्प्रेरित होकर, शिल्प, कला और कौशल की अनेक अति कमनीय वस्तुएँ बनाने का निर्माण करने में समर्थ हुए हैं।

कश्मीर की इन शृंगारात्मक शिल्प-कलाओं के उन्नयन की प्रक्रिया शताब्दियों से होकर गुजरी और परिपुष्ट हुई है और उसके प्रोत्साहन का श्रेय, बहुत कुछ जैनुल-आब्दीन जैसे उदारचित्त शासकों को भी है। कहते

है कि कश्मीरी कलाओं का प्रचुर विकास जैनुल-आब्दीन के ही शासन-काल से आरम्भ हुआ। उसने अनेक दूरस्थ तथा निकटस्थ देशों से कुशल शिल्पियों को कश्मीर में आकर बसने के लिए निमन्त्रित किया। इन शिल्पकारों ने अपने कलात्मक कौशल एवं परम्पराओं की जो छाप कश्मीरी शिल्पकला पर डाली, उसकी मनोहरता, भारत ही नहीं वरन् संसार के अन्य देशों के भी लोगों का मन बराबर मुग्ध करती चली आयी है। इसके बाद मुगलों के शासन-काल में भी कश्मीर के कला-कौशल को पर्याप्त बढ़ावा मिला और शालों का जो काम जैनुल-आब्दीन के शासन-काल में आरम्भ हुआ था, मुगल-काल में वह और भी उन्नत एवं पुष्ट हो गया। उन दिनों केवल मुगल-दरबारों में ही नहीं, बल्कि शाही हरमों में भी कश्मीरी शालों की बड़ी प्रतिष्ठा थी, जिसके कारण शाल बनाने का काम कश्मीर में दिन दूना रात चौगुना उन्नति कर रहा था।
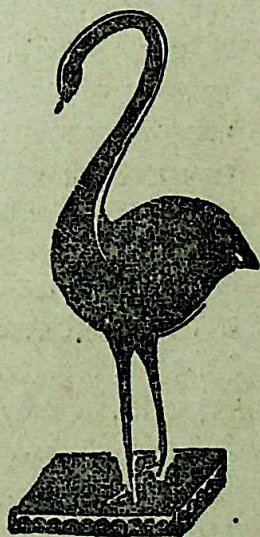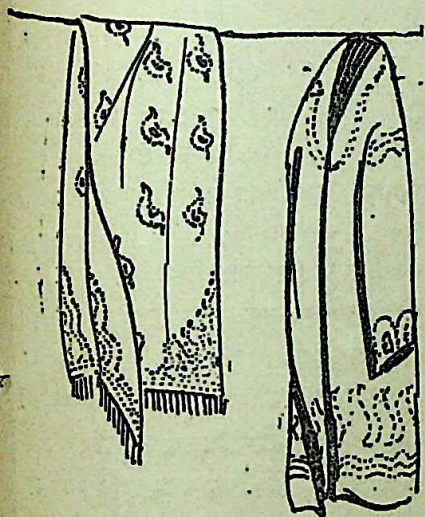
कश्मीरी शाल और पश्मीने का कोट

कश्मीरी खिलौना

अपनी बारीक कारीगरी के लिए कश्मीरी शाल विश्व-विख्यात हैं। कहते हैं कि एक बार नैपोलियन बोनापार्ट ने भी राजकुमारी जोसेफिन

को एक कश्मीरी शाल भेंट की थी। ऐसी शालें एक विशेष जाति कं तिब्बती तथा लद्दाखी बकरियों की नरम 'पश्मीना' नामक ऊन से तैयार की जाती हैं और अपनी गरमी, टिकाऊपन, बारीकी और कोमलता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। भारत में पश्चिमी बंगाल, बम्बई, पंजाब, उत्तर प्रदेश में इ शालों का बहुत प्रचलन है।

कश्मीर की शालों के लिए 'पश्मीना' तो तिब्बत और लद्दाख से प्राप्त होता है, किन्तु स्वयं कश्मीर के इलाकों में मोटे किस्म की एक और ऊन भी पैदा होती है, जो पट्टू और ट्वीड बनाने के काम आती है। इन वस्त्रों के लिए उनकी कताई हाथ से ही की जाती है और वे बुने भी हथकरघों पर ही जाते हैं। दामों में कुछ सस्ते होने के कारण इन वस्त्रों की माँग बहुत रहती है। इसके अतिरिक्त उक्त ऊन से कम्बल भी बनते हैं, जिन्हें 'पट्टू' कहते हैं और अमृतसर तथा पूर्वी पंजाब में इनकी अधिक खपत होती है।

अपने रेशम-उद्योग के लिए भी कश्मीर कम प्रसिद्ध नहीं है। कश्मीर के बने हुए रेशमी वस्त्र भारत के अनेक स्थानों में आते हैं। घाटी की जलवायु रेशम के कीड़े पालने के लिए बहुत उपयुक्त है। यद्यपि कश्मीर में कई प्रकार का रेशमी कपड़ा तैयार होता है, किन्तु हवाई छतरियों के काम में आनेवाला रेशमी कपड़ा सबसे अच्छा माना गया है। गत महायुद्ध में कश्मीर ने भारी परिमाण में इस वस्त्र का निर्यात किया था। जम्मू और कश्मीर सरकार का रेशम का कारखाना अपने प्रकार के ऐसे कारखानों में, संसार का एक बड़ा कारखाना समझा जाता है और उसमें किस्म-किस्म का रेशमी कपड़ा तैयार होता है। कश्मीरी रेशमी कपड़े अपनी कढ़ाई के लिए और भी प्रसिद्ध हैं, क्योंकि फारसी तथा मुगल ढंग की उन पर की बेल-बूटेदार कढ़ाई बड़ी ही नयनाभिराम होती है।

कश्मीर अपने गब्बों और नमदों के लिए भी मशहूर है। ये दोनों ही बड़े आकर्षक और सस्ते होते हैं। जो लोग कीमती कालीन नहीं खरीद सकते, वे गब्बों से अपना काम बखूबी चला सकते हैं। ये गब्बे पुराने कम्बलों से तैयार किये जाते हैं। बहुत से कम्बल पहले भाँति-भाँति

के रंगों में रंग लिये जाते हैं और फिर उन्हें एक अनोखे ढंग से एक साथ सी दिया जाता है। श्रीनगर से ३४ मील दूर 'अनन्त नाग' नामक स्थान गव्बा-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। नमदे भी फर्श पर बिछाने के काम आते हैं। लड़ाई के दिनों में अमेरिका में भी कश्मीरी नमदों की बिक्री होने लगी थी। भारत में अमृतसर और पूर्वी पंजाब के अन्य नगरों में कश्मीर के गव्वे और नमदे बहुत बिकते हैं।

कालीनों की बुनाई कश्मीर का एक बहुत ही पुराना तथा मुख्य उद्योग है और यहाँ के कालीन मुगल-काल से ही प्रसिद्ध हैं। इन कालीनों की बनावट ईरानी, तुर्की, यारकन्दी आदि ढंगों की होती है और बहुतेरे कश्मीरी ग्रामीण के घरों में कालीन बुनने के लिए करघे लगे हैं।

पेपरमाशी का काम कश्मीर की एक विशेषता है। यह फारस की कला है। पेपरमाशी का काम, आज भी वहाँ, फारस के प्रवासी कारीगरों के वंशजों के ही हाथ में है।

पेपरमाशी की वस्तुएँ कागज के गूदे से बनायी जाती है। कागज के घुले और सड़े गूदे से विभिन्न आकारों की ये वस्तुएँ, बड़ी कारीगरी से तैयार की जाती है। उन्हें फिर सुखा लिया जाता है और फिर चमक लाने के लिए उन पर पालिश की जाती है। इसके बाद उनकी रंगाई होती है और भाँति-भाँति के बेल-बूटों और चित्रों से वे सजायी जाती हैं। पाउडर रखने के डिव्वे, शृंगारदान, सिगरेट-केस, टेबुल-लैम्प आदि अनेक वस्तुएँ पेपरमाशी से बनती हैं।

लकड़ी पर खुदाई का काम भी कश्मीर में बहुत होता है। वहाँ के लोगों का यह एक पुराना धन्धा है। अखरोट की साधारण लकड़ी से वहाँ के कारीगर दैनिक उपयोग की अनेक वस्तुएँ तैयार करते हैं, जो अपनी सुन्दरता और सफाई के लिए प्रसिद्ध हैं। फैन्सी मेज़, बक्स, सिगरेट केस, शृङ्गारदान, पुष्पपात्र, ट्रे आदि अनेक वस्तुएँ अखरोट की लकड़ी से बनती हैं। ये वस्तुएँ कई प्रकार की होती हैं और कई ढंग से बनायी जाती हैं।

चाँदी की चीजों की नक्काशी का काम भी कश्मीर में काफी प्रचलित है। बक्सों, कटोरों प्यालों, गिलासों, चायदानी, कंघों और चित्रों के फ्रेमों पर, वहाँ के कारीगर बड़ी सुन्दर नक्काशी करते हैं। इन रजत वस्तुओं पर फूलों, कमलों और चिनार की पत्तियों की नक्काशी बहुत अच्छी लगती है। इसके अतिरिक्त कश्मीर में ताँबे के बर्तनों और कीमती गहनों तथा पत्थरों का भी काम होता है। कई किस्म की फ़रें और खालें भी कश्मीर में व्यापार की वस्तुएँ हैं और वहाँ के फर से बने हुए कोट, दस्ताने व टोपियाँ दर्शकों को बहुत पसन्द हैं। कश्मीर की घूमने की छड़ी भी लोक-विख्यात है और सरपत की बनी हुई मेजें, कुर्सियाँ, टोकरियाँ आदि लोगों को बहुत पसन्द हैं।
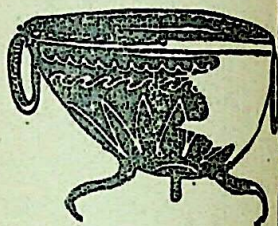
अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—शिल्प, मनोरम, हस्त-कौशल, उन्नयन, कमनीय, शृंगारात्मक।

(२) विपरीतार्थक बताइए—दूरस्थ, सस्ते और उन्नयन।

२—विषय-सम्बन्धी

(३) कश्मीर कहाँ है? वहाँ की कैसी जलवायु है?

(४) कश्मीर में कौन-कौन सी वस्तुएँ बनती हैं?

(५) जैनुल-आब्दीन कौन था?

(६) कश्मीर की कौन वस्तु अधिक प्रसिद्ध है?

(७) कश्मीर में ऊनी और लकड़ी का सामान क्यों अधिक बनाया जाता है?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(८) प्रथम अनुच्छेद का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(९) विशेषण बनाइए—प्रारम्भ, कला और प्रकृति ।

(१०) 'टिकाऊपन' किस प्रकार की संज्ञा है ? ऐसी पाँच संज्ञाएँ बताइए ।

(११) समास सविग्रह बताइए—उदारचित्त, विश्व-विख्यात और जलवायु ।

५—रचना-सम्बन्धी

(१२) वाक्यों में प्रयोग कीजिए—दिन दूनी रात चौगुनी ।

(१३) कश्मीर की शिल्प-कला के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए ।

—:०:—

: ३१ :

शिवा-शौर्य

श्री भूषण त्रिपाठी

[महाकवि भूषण हिन्दी के प्रथम राष्ट्र-कवि माने जाते हैं। आधुनिक खोजों के अनुसार उनका पूरा नाम मनीराम ज्ञात हुआ है और यह कहा जाता है कि उनका जन्म वनपुर (कानपुर) नामक स्थान में आषाढ़ वदी १३, रविवार सं० १८३८ को हुआ था। अपने पिता की देख-रेख में ही उन्होंने कविता करना सीखा। उनके आदर्श थे—शिवाजी। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह प्रायः शिवाजी की ही प्रशंसा में है। उनकी कविता में ओज है और वह वीररस-प्रधान है। यहाँ शिवाजी की सेना की प्रशंसा में उनके रचे हुए कुछ छन्द दिये जाते हैं।]

[१]

साजि चतुरंग, वीर-रंग मैं तुरन्त चढ़ि,
सरजा सिवाजी जङ्ग जीतन चलत हैं।
'भूषन' भनत, नाद बिहद नगारन के
नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल शैल उसलत हैं।
तारा सो तरनि धूरि-धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं॥

[२]

बाने फहराने, घहराने घण्टा गजन के,
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।

नय महराने ग्राम नगर पराने, सुनि--
बाजत निसानें सिवराज जू नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुम्भ कुञ्जर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के ।
दल के दरारे हूते कमठ करारे फूटे,
केरा के-से पात बिहराने फन सेस के ॥

[३]

बद्दल न होंहि, दल दच्छिन घमण्ड मांहि
घटाहू न होंहि, इम शिवाजी हंकारि के ।
दामिनि दमक नांहि, खुले खंग बीरन के,
इन्द्र-धनु नांहि ये निशान हैं सवारी के ॥
देखि-देखि मुगलों की हरमें भवन त्यागें,
उझकि-उझकि उठें बहत बयारी के ।
दिल्ली मति भूलि कहै बात घन घोर-घोर
बाजत नगारे जो सितारे गढ़धारी के ॥

[४]

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्दमूल भोग करें, कन्द-मूल भोग करें,
तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं ।।
'भूषन' सिथिल अंग, भूषन सिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वै विजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं ।।

[५]

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवा को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं ।।
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस-देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं ।।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—चतुरंग, तुरंग, गब्बरन, ऐल-फैल, उलसत, पारावार, नग, गज, बयारी, नगन, कमठ, कीरति, और समसेर।

(२) तत्सम बताइए—बिहद, सेस, समसेर, खलक, हंकारी, तरनि, मन्दर, कैस, केरा, अस्मृति, धरम, देस, दुनी और सपूत।

(३) पर्यायवाची बताइए---गज, भवन, और गढ़ ।
(४) 'नग' के भिन्न-भिन्न अर्थ बताइए ।

२–विषय-सम्बन्धी

(५) शिवाजी कौन थे ? भूषण उनसे क्यों प्रभावित थे ।
(६) मुगल कौन थे ? शिवाजी से उनका क्या सम्बन्ध था ?
(७) शिवाजी के आतंक का वर्णन कीजिए ।
(८) अंन्तिम छन्द के आधार पर शिवाजी के चरित्र की विशेषताएँ बताइए ।

३–भावार्थ-सम्बन्धी

(९) चौथे छन्द में प्रयुक्त उन शब्दों को छाँटिए जिन के द्वारा कवि ने चमत्कार उत्पन्न किया है ।
(१०) 'केरा के-से पात बिहराने फन सेस के' में 'सेस' से क्या तात्पर्य है ?

४–रचना-सम्बन्धी

(११) भूषण की भाषा-शैली के सम्बन्ध में लिखिए ।

---:०:---

: ३२ :

बनारसी एक्का

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम० ए०

[श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' हिन्दी के प्रसिद्ध हास्य-लेखक हैं। उनका जन्म प्रबोधिनी एकादशी सं० १९५२ को काशी में हुआ था। उन्होंने दो विषयों—अंग्रेजी और राजनीति में एम० ए० पास किया है। विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें लिखने का अभ्यास है। हास्य और व्यंग्य में उनकी अधिक पहुँच है। उन्होंने हास्यरस में कई कहानियाँ और निबन्ध लिखे हैं। हास्यरस में उनकी कविताएँ भी बहुत सुन्दर होती हैं। इस दिशा में वह एक नवीन शैली के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। यहाँ उनकी रचना दी जाती है। इसमें उन्होंने बनारसी एक्के का बहुत ही सुन्दर शब्द-चित्र उतारा है।]

कुछ वस्तुएँ परमात्मा स्वयं बनाता है और कुछ जब काम की अधिकता होती है, तब ठेके पर भी बनवा लेता है। बनारसी एक्का परमात्मा ने अपने हाथों गढ़ा है। एक और बात है, विधना का कुछ ऐसा विकट विधान है कि जिस शब्द के आगे बनारसी शब्द लग जाय, उस जोड़ की दूसरी वस्तु स्वर्ग, नरक और संसार में मिलना कठिन है।

बनारसी साड़ी के समान साड़ी कहाँ दिखाई पड़ती है ? बनारसी 'लँगड़ा' के सामने कितने ही दो पैरवालों के मुँह से लार टपक पड़ती है। बनारसी ठग ऐसी चतुराई से माल उड़ा ले जाते हैं कि बड़े-बड़े लेखक और कवि भी दूसरों के लेख और कविताएँ इस शान से नहीं अपना सकते। ऐसी वस्तु बनारसी एक्का है। आप वायुयान पर चढ़े हों, गर्भ

पर भी चढ़े हों, पर यदि बनारसी एक्के पर सवार नहीं हुए तो भारतवर्ष में जन्म लेना बेकार है। इससे कहीं अच्छा था कि आप मंगोलिया की मरुभूमि में या टस्मानिया के टापू में जन्म लेते। एक मसल है—"काशी बस के क्या हुआ, जो घर औरंगाबाद।" वह हिन्दू नहीं, जिसने काशी के पंडों को न पूजा, और ग्रहण के अवसर पर धक्के न खाये अथवा प्रयाग के हज्जामों द्वारा उल्टे छुरे से मूड़ा न गया। वह हिन्दू क्या, जो हर की पैड़ी में पौड़ा नहीं, और बद्रीनाथ की बर्फ में लोटा नहीं। इसी प्रकार मनुष्य की बिरादरी से हम उसका हुक्का-पानी बन्द कर देना चाहते हैं, जो बनारसी एक्के पर सवार न हुआ हो।

बनारस में एक्के दो प्रकार के होते हैं—एक साधारण और दूसरा गहरेबाज। साधारण एक्का अधिक दिखाई देता है। लेखनी से इसका चित्रण करना मेरे लिए कठिन होगा। इसी से समझ लीजिए कि किसी कवि ने अभी तक इस पर अपनी प्रतिभा का प्रसार नहीं किया। 'हरिऔध' जी ने तीसी और सरसों पर कविता की, पर इस पर कविता करने का उन्हें साहस नहीं हुआ। जोशी-बन्धुओं ने भी इस पर कोई लेख नहीं लिखा। जब ऐसे सर्वतोमुखी प्रतिभावालों के खुर इस मैदान में नहीं आये, तब मैं नाचीज़ किस खेत की मूली हूँ। फिर भी काशी में रहने के नाते और सबेरे-शाम इसका दर्शन करते-करते कुछ न कुछ कह ही लूँगा।

साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के अलबम हैं या यों कहिये कि आजकल स्कूलों और कालेजों के अधिकांश विद्यार्थियों की चलती-फिरती तसवीरें हैं। मालूम नहीं, इनके मालिक इन्हें खाने को देते हैं या नहीं, या कितना देते हैं, पर बेचारे जानवर होते हैं बड़े जीवट के। पसली की हड्डियाँ ऐसी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे एक्स-रे का चित्र। हाँकने की गति हिन्दी के कहानी-लेखकों की संख्या से कम न होगी। मोटाई इन वीर-तुरङ्गों की ऐसी होती है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। इतने पर भी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, इनमें इतना साहस है कि पीन वृहदाकारविशिष्ट गुरुत्वपूर्ण मानस-पिण्डों को कुछ खींच ही ले जायेंगे।

परन्तु यदि इतना ही कहकर मैं अपनी कलम रोक लूँ, तो एक्के के प्रति घोर अन्याय होगा। बनारसी एक्का स्वयं अद्भुत पदार्थ है। लखनऊ, प्रयाग, कानपुर, आगरा, पटना और कहाँ-कहाँ एक्के होते हैं, पर यहाँ के एक्के ने चलना आरम्भ किया और एक मधुर-संगीत पैदा हुआ। पावदान और पहिये के संयोग से 'सरगम' का सुरीला-आलाप तो बनारसी एक्के का वैसा ही जन्मसिद्ध अधिकार है, जैसा भारतीय नेताओं का मोटरकार पर सवार होना। पावदान न होने पर भी ऐसे अनेक स्वर और उसके भेद आप सुनेंगे कि तबीयत फड़क उठेगी। यदि सचमुच कोई पहिया 'फ्री-ह्वील' है, तो वह बनारसी एक्के का पहिया। ऊपर-नीचे, दाहिने-बाएं जिधर देखिये वह घूमता मालूम देगा। देखनेवाले या सवारी को यह भान होगा कि पहिया धीरे-धीरे धुरे से असहयोग कर रहा है; परन्तु बात ऐसी नहीं है। इसकी चाल का चाल न पूछिए। जब चलते-चलते यह रुक जाता है, तब घोड़े को चाहे जितना पुचकारिए, चापलूसी कीजिए, मनाइए, पर टस से मस होने का नाम नहीं लेता। ऐसे समय एक्कावान महाशय घोड़े से अनेक रिश्ते जोड़ना आरम्भ कर देते हैं। पिता, चाचा, मौसा, नाना, दादा, बहनोई शायद ही कोई ऐसा सम्बन्ध रह जाता हो, जो एक्कावान न जोड़ता हो। जिन शब्दों का प्रयोग ये सज्जन करते हैं, उन सब को यहाँ मेरे लिए लिखना कठिन है।

गहरेबाज एक्का 'कैपिटलिस्ट' समुदाय का प्रतिनिधि है। ऐसे एक्कों के घोड़े महाजनों के समान मोटे, चापलूसों के समान ताबेदार और पूँजीपतियों के समान अकड़नेवाले होते हैं। इनके एक्केवान अफलातून के अब्बा और सुकरात के बावा से अपने को कम नहीं समझते। जिस समय ऐसे दो-तीन एक्के एक साथ दौड़ने लगते हैं, उस समय यदि आप सवार हों, तब बीमा-कम्पनियों की उपयोगिता सूझने लगती है।

आपके पास मोटर हो या न हो, बनारस के रईसों में आपकी गिनती तभी होगी, जब एक ऐसे एक्के पर कम से कम रामनगर की हवा खा आयें। यह रईसी, यह शानवान कुछ और ही चीज है। बढ़िया पम्प जूता, किनारेदार धोती, चिकने पोत का कुरता, दुपलिया-टोपी लगाये एक

ओर साहुजी और दूसरी ओर इस ढंग की पोशाक पहने उनके दोस्त और एक्केवान की बगल में एक सिपाही एक हाथ में लम्बा लट्ठ लिये हुए तथा दूसरे हाथ में भङ्ग-बूटी का सामान सम्भाले हुए नजर आते हैं।

काशी में रहने के कारण मुझे एक्के पर सवार होना ही पड़ता है। इसलिए एक्केवान के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना अच्छा ही होगा। बनारसी एक्केवान एक संस्था है। उसकी बातों में सरसों का तीखापन, शराब की कड़ुवाहट, मिरचे की तिताई और गरम-मसाले की गरमाहट का मजा पाया जाता है। एक बार जरा जोर से बात कीजिए, देखिए क्या आनन्द आता है। लेखनी में वह दम कहाँ कि व्यक्त कर सके! "एक लगावै, चार पावै"—यह कहावत चाहे और कहीं सच हो या न हो, यहाँ तो सोलहों आने सर्च उतरती है। किसी एक्के-वान को कुछ कहिए। देखिए सूद दर सूद सहित आप उसका उत्तर पाते हैं या नहीं। लड़ने में इनकी बराबरी जर्मनी पल्टन भी नहीं कर सकती। हाँ, नियम पालने में ये बड़े पक्के होते हैं। प्रत्येक सवारी के चलने के समय पुलिस के हाथ में एक पैसा ये अवश्य देंगे। यह और किसी लिए नहीं, केवल इसलिए कि वह इनका एक्का अगोरा करते हैं। पुलिस की सवारी को विना किराया लिये ये अवश्य बैठा लेंगे। ऐसा करके ये प्राचीन सनातन-धर्म के अनुसार प्रजा का धर्म निबाहते हैं। प्रजा का धर्म राजा की सेवा करना है।

जब से बनारस में ताँगों का ताँता लगा और बसों तथा रिक्शों की बहुतायत हो गयी, तब से हमारे एक्केवालों को बहुत हानि उठानी पड़ रही है। मुझे कभी-न-कभी इनकी शरण लेनी ही पड़ती है। एक बार एक एक्के पर सवार होकर स्टेशन से आ रहा था। कुछ पहिये का सुहावना शब्द, कुछ घोड़े की मन्थर-गति, झपकियाँ लेने लगा। आँख लगते देर न हुई होगी कि छतरी के खम्भे से माथा जा लगा। मैंने समझा, सपने में गामा से कुश्ती लड़ रहा हूँ और उसे उठा कर दे मारा, इसी का झटका लगा है। आँखें अच्छी तरह खुलीं, तो दो बातें दिखाई दीं। सर के अन्दर हवाई जहाज-सी कोई चीज भन्ना रही है, और घोड़े-

राम दण्डवत कर रहे हैं, मगर सामने न कोई मन्दिर था, न कोई पण्डि
जी। मुझे ऐसा मालूम हुआ, हो न हो पल्थी मार कर घोड़ा सन्ध्या क
रहा है। वह सन्ध्या का समय था। ऐसी दशा में विचार आया, ज
मण्डन मिश्र का तोता संस्कृत बोलता है, तब यदि काशी में घोड़े सन्ध्य
करते हों, तो क्या आश्चर्य ?

एक्केवाले से पूछा कि "क्या मामला है ?" वह बोला—"साहब, ज
उतर कर चलिए, अभी ठीक हुआ जाता है।"

मैंने पूछा—"क्या बीमार है ?"

वह बोला—"आप कैसी बात कहते हैं। यह दिन भर में केवल चा
बार स्टेशन आया है। अभी बच्चा है। छैला जाता है।"

मुझे अधिक प्रश्न करने की हिम्मत न हुई ? थोड़ी देर में घोड़ारा
लड़खड़ाते हुए अपने चारों पैर पर खड़े हुए ? मैं सवार हुआ। पहली बा
मैं भूल गया था, पूछ बैठा—"यह घोड़ा कितने दिन का हुआ ?"

उसने उत्तर दिया—"बत्तीस साल का।"

यह तो मैंने पढ़ा था कि सौ और सवा सौ वर्ष के मनुष्य अब
होते हैं, पर बत्तीस वर्ष का सतयुगी घोड़ा मैंने नहीं सुना था। मैं
समझा वह अपनी अवस्था बता रहा है। इसलिए मैंने फिर पूछा—
"तुम्हारी उम्र नहीं पूछ रहा हूँ। घोड़े की पूछ रहा हूँ।"

इस पर उसकी त्योरियाँ चढ़ गयी। उसने कहा—"आप मुझसे दिल्ल
कर रहे हैं ? यह घोड़ा मेरे बाप के जमाने का है। यह मुझे अपने लड़
की तरह प्यार करता है। मुझे बेचना नहीं है। आप इसे कमजोर
समझें। इसे इसलिए अधिक नहीं खिलाया जाता कि अधिक बलवा
होने से यदि तेजी से दौड़ेगा, तो बनारस की सड़कें ऐसी हैं कि सवा
के दो-दो मुँह हो जायेंगे। यह तो हम लोग आप लोगों पर एहसा
करते हैं, नहीं तो सर्जनों को रुपया देते-देते आप लोगों का दिवा
निकल जाय।"

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—विकट, विधान, अलबम, ग्रहण, प्रतिभा, अलाप, समुदाय, कैपिटलिस्ट, त्योरियाँ और सतयुगी ।

(२) पर्यायवाची बताइए—घोड़ा, मधुर, सूद और वीर ।

(३) विपरीतार्थक बताइए—ग्रहण, संयोग, गति और असहयोग ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) काशी के एक्कों में क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं ?

(५) 'गहरेबाज एक्का' से क्या तात्पर्य है ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) भावार्थ लिखिए—

[अ] साधारण एक्के....खींच ले जायेंगे ।

[ब] इस पर उसको......निकल जाय ।

[स] आप के पास मोटर.......नजर आते हैं ।

—व्याकरण-सम्बन्धी

(७) सन्धि विग्रह कीजिए—बृहदाकार, परमात्मा और अधिकांश ।

(८) समास स-विग्रह बताइए—जन्म-सिद्ध, मानस-पिंड ।

(९) कैसी संज्ञाएँ हैं—व्यक्तित्व, संस्कृत, दरिद्रता और कड़ुवाहट ।

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) मुहावरों का प्रयोग कीजिए :—

त्योरियाँ चढ़ जाना, दिवाला निकल जाना, छैला जाना, दो-दो मुँह हो जाना, हुक्का-पानी बन्द कर देना ।

—:०:—

अविवेक का त्याग

पं० रामनरेश त्रिपाठी

[पं० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के चोटी के कवि और लेखक हैं। उनका जन्म सं० १९४६ में जौनपुर के अन्तर्गत कोइरीपुर में हुआ था। उन्हें अधिक शिक्षा नहीं मिली। स्वाध्याय से ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रसार किया। इसके पश्चात् वह साहित्य-क्षेत्र में आये। उन्होंने सब कुछ लिखा। वह अब भी बराबर कुछ लिखते रहते हैं। उनकी भाषा बड़ी चुस्त और गठी हुई है। व्याकरण के नियमों का वह अपनी भाषा में विशेष ध्यान रखते हैं। प्रस्तुत कहानी में उन्होंने एक प्राचीन कवि के जीवन को चित्रित किया है।]

किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवि का संस्कृत साहित्य में बड़ा गौरव है। कहा जाता है कि भारवि सातवीं सदी में विद्यमान थे।

भारवि के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा चली आ रही है। वह मनोरञ्जक होने के साथ-साथ बहुत उपदेश-जनक भी है। जैसी घटना भारवि पर बीती थी, वैसी ही प्रत्येक कीर्ति-लोलुप-युवक पर अब भी बीता करती है। अतएव; वह दन्त-कथा प्रत्येक युवक के लिए अत्यन्त आकर्षक है।

दन्त-कथा यह है— .

भारवि शिक्षा समाप्त करके घर पर रहने लगे। वह बड़े ही प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि थे। उनकी विद्वत्ता की कीर्ति से चारों दिशाएँ निनादित हो उठी थीं। पर भारवि के पिता कभी उनकी प्रशंसा नहीं करते थे। उनकी प्रशंसा का प्रसङ्ग आने पर वह कह उठते कि अभी तो वह साधारण बुद्धि का बालक है। चारों ओर से कीर्ति सुन-सुन कर युवक

भारवि का मन आनन्द अनुभव करता रहता था; पर उसको अपने पिता के मुख से अपनी निन्दा सुनना प्रिय नहीं लगता था। भारवि ने सोचा—"इस पृथ्वी पर सभी मेरा यश गान कर रहे हैं। केवल एक मेरे पिता ही मेरी निन्दा करते हैं। पिता के कारण मेरी कीर्ति को बड़ा धक्का लग रहा है।"

अभिमान के साथ अविवेक तो रहता ही है। भारवि को उसने पिता की हत्या कर डालने की सम्मति दी। पूर्णमासी की रात थी। चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से आकाश-मण्डल को सुशोभित कर रहा था। भारवि के माता-पिता छत पर बैठे हुए पूर्णचन्द्र का सौन्दर्य देख रहे थे।

माता ने कहा—"चन्द्रमा कितना सुन्दर है! इसके प्रकाश में दिशाएँ उज्ज्वल हो उठी हैं।"

पिता न कहा—"जैसे भारवि की कीर्ति से।"

माता ने आश्चर्य से कहा—"तुम तो सदा भारवि की निन्दा किया करते हो। आज यह क्या कह रहे हो?"

पिता ने कहा—"निन्दा इसलिए करता हूँ, जिससे उसको अभिमान न हो। कीर्ति सुनते-सुनते उसमें अभिमान आ जायगा, तो वह उसकी कीर्ति को शीघ्र ही नष्ट कर डालेगा। कीर्ति की रक्षा नम्रता करती है। नहीं तो कौन ऐसा पिता है, जो अपने पुत्र की कीर्ति सुनकर आनन्दित न हो? भारवि तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है।"

भारवि पिता को मारने के लिए हाथ में तलवार लिए अन्धकार में सीढ़ी के पास खड़े थे। माता-पिता की बात सुनकर अवाक् रह गये। उनके हृदय में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। उस समय वह अपने शयनागार में चले गये, पर उनको रात भर नींद नहीं आयी।

प्रातःकाल वह पिता के पास पहुँचे और उन्होंने पूछा—"पिता जी! मानसिक अपराध का क्या दण्ड है?"

पिता कुछ परिहास-प्रिय थे। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"बारह वर्ष तक ससुराल में जाकर रहे।"

भारवि ससुराल जाने की तैयारी करके माता-पिता से आज्ञा लेने आये। पिता ने कारण पूछा तो उन्होंने रात की सारी कथा कह सुनायी। पिता ने कहा—"मैंने तो हँसी की थी। पहले तो मैं तुमको क्षमा करता

हूँ। यदि इससे तुम्हारे मन की ग्लानि न जाय, तो घर पर रह कर ही, कोई प्रायश्चित्त कर डालो।"

भारवि ने कहा—"नहीं पिता जी! मेरे मन की ग्लानि बारह वर्ष तक ससुराल में रहकर ही जायगी। आप आज्ञा दीजिए।"

भारवि अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। इससे इस अवसर पर माता-पिता के दुःख का अनुमान किया जा सकता है।

भारवि ससुराल चले गये। पहले दो-चार दिन तक तो ससुराल में भारवि का अधिक आगत-स्वागत हुआ। अच्छ-अच्छे भोजन बने। मित्रों के समागम का सुख उनको समर्पण किया गया, स्त्रियों ने दोनों समय भोजन के अवसर पर हर्ष-सूचक गीत गा-गाकर उनकी अभ्यर्थना की। पर जब ससुरालवालों ने यह सुना कि भारवि बारह वर्ष तक यहीं रहने आये हैं, तब उनका उत्साह बहुत ही नीचे उतर गया।

चार-छः दिन के बाद ही भारवि के हाथ में भी खेती के अस्त्र-शस्त्र पकड़ा दिये गये। ऐसी स्थिति में वह साहित्य-चर्चा छोड़कर दिन भर घास छीलने, खेत गोड़ने या सींचने, पशुओं की रखवाली करने और उन्हें चारा देने में व्यस्त रहने लगे।

जब तक ससुरालवालों को कुछ सङ्कोच था, भारवि का प्रायश्चित्त ठीक चलता रहा। पर थोड़े ही दिनों में वह यह अनुभव करने लगे कि ससुरालवाले उनको भार-स्वरूप समझते हैं। वे बात-बात में भारवि का अपमान कर बैठते थे, और चुभनेवाले शब्दों से उनको व्यथित कर डालते थे। भारवि समझते थे—यही तो अभिमान का प्रायश्चित्त है। पर भारवि की स्त्री को पति का अपमान सहन नहीं होता था। उसने अपने पिता से यह प्रार्थना की कि उसे और उसके पति को कुछ खेत अलग दे दिये जायँ, वे दोनों अलग घर बना कर रहेंगे। भारवि के ससुर ने भी रोज की किच-किच से पिण्ड छुड़ाने के लिए कन्या की सम्मति ठीक समझी। और भारवि को कुछ खेत देकर अलग कर दिया। भारवि अपनी स्त्री के साथ अलग झोपड़ी बना कर रहने लगे।

संस्कृत के पण्डित कहीं खेती कर सकते हैं ? भारवि खेत की रखवाली करने जाते और खेत खानेवाली चिड़ियों का आनन्द-उत्सव देखकर वह ऐसे मुग्ध हो जाते कि उन्हें उड़ाने की अपेक्षा वह और अधिक चिड़ियों के आगमन की प्रतीक्षा में रहते। अन्त में एक दाना भी खेत से घर नहीं आता था।

स्त्री ने कहा—तुमसे खेती नहीं हो सकती। बताओ, व्याकरण चबायें या काव्य-रस पियें ?

भारवि ने सोचा—स्त्री ठीक कहती है। मैं परदेश जाकर कुछ कमा लाऊँ, तो ठीक होगा।

भारवि परदेश चले गये। कागज पर एक श्लोक लिख कर वह स्त्री को दे गये कि जब तुम पर कोई बहुत बड़ा आर्थिक सङ्कट पड़े, तब यह श्लोक बेंच कर काम चलाना।

बचा-खुचा अन्न, जो भारवि छोड़ गये थे, थोड़े दिनों में बहुत बचा कर खाने पर भी समाप्त हो गया। स्त्री बेचारी भूखों मरने लगी।

उन दिनों उस गाँव का राजा एक नया बाजार लगाया करता था। यह बाजार चौथे रोज लगा करता था। विक्रेताओं को उत्साहित करने के लिए, सायंकाल तक बिकने से बची हुई वस्तुएँ राजा स्वयं मोल ले लिया करता था। एक दिन भारवि की स्त्री भी श्लोक लेकर बाजार में जा बैठी। श्लोक को कोई मोल लेने वाला न मिला। सायंकाल राजा ने नौकरों से जाँच कराया कि किसकी क्या वस्तु बिकने से रह गयी है। नौकरों ने पूछ-ताछ करके राजा को समाचार दिया। एक नौकर भारवि की स्त्री के पास भी गया। उसने पूछा—तुम्हारे पास क्या है ?

भारवि की स्त्री ने कहा—यह श्लोक है।

नौकर के लिए बाजार में यह सर्वथा नया सौदा था।

उसने कुछ रुखाई से कहा—श्लोक ? क्या मूल्य लोगी ?

भारवि की स्त्री ने कहा—एक हजार रुपये।

नौकर ने समझा, यह पागल है।

बाजार की समाप्ति पर राजा उठ कर जाने लगा तब उसने नौकरों

से फिर पूछा—और किसी का कोई माल बिकने से रह तो नहीं गया है ?

उसी नौकर ने कहा—और सबका माल ले लिया गया है। एक स्त्री एक श्लोक लेकर बैठी है। उसका दाम वह एक हजार रुपये मांग रही है, मुझे तो वह पागल जान पड़ती है।

राजा ने कहा—उसे बुलाओ।

भारवि की स्त्री बुलाई गयी। राजा ने उससे श्लोक देखने के लिए माँगा। स्त्री ने दे दिया। श्लोक निम्नलिखित था—

सहसा विदधीत न क्रियाम्,
अविवेकः परमापदाम् पदम्।
वृणुते हि विमृश्य कारिणम्,
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

"कोई काम उतावलेपन से न करो। अविवेक से किया हुआ काम भयानक विपत्ति उपस्थित कर देता है। विचार कर काम करनेवाले के यहाँ गुण-लुब्ध सम्पदा स्वयं आती है।"

राजा ने एक सहस्र मुद्रा देकर श्लोक ले लिया। उसने उस श्लोक को शयनगृह, कचहरी, बैठक, भोजनालय, अन्तःपुर आदि मुख्य-मुख्य स्थानों में कागजों पर लिखवा कर टँगवा दिया।

राजा का भाई राजा को मार कर गद्दी लेना चाहता था। वह कई दिनों से षड्यन्त्र रच रहा था। उसने राजा के नाई को धन का लोभ देकर मिला लिया।

एक दिन नाई राजा का बाल बना रहा था। वह राजा के गले में छुरा घुसेड़ने ही वाला था कि सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर टँगे हुए श्लोक पर जा पड़ी। उसे पढ़ कर वह शिथिल पड़ गया। उसने सोचा—यदि मैं राजा को मार डालूँगा तो मैं भी तत्काल मार डाला जाऊँगा। फिर पुरस्कारवाला रुपया किस काम आयेगा ?

वह चिन्तित हो गया। राजा को उसकी घबराहट देखकर उस पर सन्देह हुआ। राजा ने आवेश-पूर्ण स्वर में उसकी घबराहट का कारण

पूछा। नाई ने सब सच-सच कह दिया और यह भी कहा कि इसी श्लोक ने आपके और मेरे दोनों के प्राण बचाये हैं? राजा उस दिन से सावधान रहने लगा और उस श्लोक पर उसका प्रेम और भी अधिक हो गया।

नाई द्वारा निष्फल-प्रयत्न होकर राजा का भाई निराश नहीं हुआ। उसने राजा के वैद्य को मिलाया। एक दिन राजा बीमार पड़ा। वैद्य की दवा होने लगी। राजा के भाई के संकेत पर वैद्य ने दवा में विष मिला कर राजा को पिलाना चाहा। दवा का कटोरा वह राजा को देना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि दीवार पर टँगे श्लोक पर जा पड़ी। वह रुक गया और सोचने लगा—मैं इस राजा को, जो मेरे विश्वास पर है, विष दे दूँगा तो उसका भाई, जो गद्दी पर बैठेगा, मेरा विश्वास कैसे करेगा। उसकी दृष्टि में भी तो मैं अपराधी ही रहूँगा। सम्भव है, वह मुझे भी मरवा डाले। यह सोच कर उसने कटोरा भूमि पर रख दिया और कहा—"दवा ठीक नहीं, दूसरी दूँगा।"
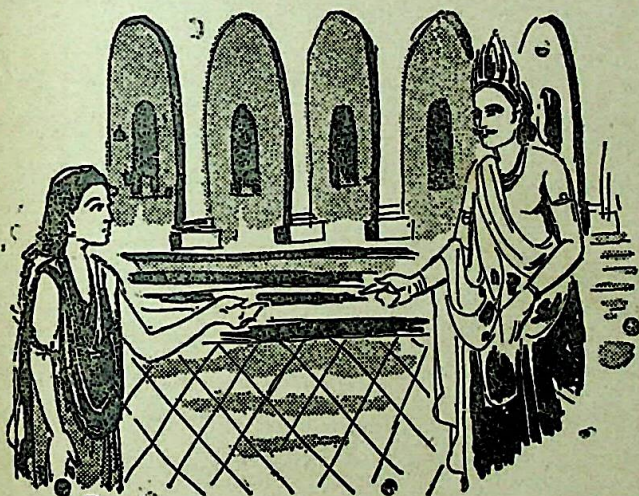
राजा को उस पर सन्देह हुआ। उसने राजदण्ड का भय दिखला कर उससे स्पष्ट बोलने के लिए कहा। तब वैद्य ने सब कह सुनाया। राजा ने अपने भाई को बन्दी-घर में डाल दिया।

भारवि के श्लोक ने दो बार राजा के प्राण बचाये। अतएव; उस एक हजार की वस्तु का मूल्य अब तो लाखों से भी अधिक हो गया।

भारवि परदेश में अपनी विद्या के बल से बहुत-सा धन कमा कर घर आये। इधर उनकी स्त्री एक हजार रुपये पर श्लोक बेच कर कुछ सुख से रहने लगी थी। पर उसको सदा पति की चिन्ता बनी रहती थी। भारवि ने घर आकर श्लोक की बिक्री का समाचार सुना। वह एक हजार रुपये लेकर राजा के पास गये। राजा स्वयं बहुत दिनों से उक्त श्लोक बेचनेवाली स्त्री अथवा उसके रचयिता की खोज में था। भारवि ने जाकर राजा से निवेदन किया—महाराज! मेरी धर्म-पत्नी दारिद्र्य के दुःख से पीड़ित होकर एक श्लोक आपके हाथ एक सहस्र मुद्रा पर बेच गयी है। मैं एक हजार मुद्रा लेकर आया हूँ। आप अपना रुपया लीजिए और मेरा श्लोक मुझे वापस दीजिए।

राजा श्लोक के रचयिता को पाकर अपार आनन्द से उल्लसित हो उठा। उसने भारवि को छाती से लगा लिया और कहा—एक हजार इसका मूल्य कम है। मैं इसका मूल्य एक लाख देता हूँ। इसने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं इसे अपने पास से कभी अलग न होने दूँगा।

राजा ने एक लाख रुपया भारवि को दिया और कहा—आज से आप हमारे राज-पण्डित हुए।

बारह वर्ष पूरा होने पर भारवि स्त्री को लेकर अपने माता-पिता के पास गये और अपने मानसिक अपराध का प्रायश्चित्त करके, माता-पिता से क्षमा माँग कर, उनके साथ रहने लगे। कुछ दिनों के बाद राजा की आज्ञा से वह माता-पिता और स्त्री सहित राजधानी में आकर रहने लगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—रचयिता, दन्तकथा, कुशाग्र, मानसिक, सर्वांग, प्रायश्चित्त, भार-स्वरूप, निष्फल, उत्साहित और उल्लसित।

(२) विपरीतार्थक बताइए---अभिमान, व्यथित, अभ्यर्थना और उत्साह।
(३) 'रचना' शब्द से जितने शब्द आप बना सकें बनाइए।
(४) भारवि कौन था ? उसके चरित्र की आलोचना कीजिए ।

२--विषय-सम्बन्धी

(५) इस पाठ का शीर्षक 'अविवेक का त्याग' क्यों रखा गया ?
(६) भारवि के जीवन-परिचय से तुम्हें क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

३--भावार्थ-सम्बन्धी

(७) भावार्थ लिखिए :--

[अ] अभिमान के साथ.....देख रहे थे ।
[ब] वह चिन्तित हो गया.....अधिक हो गया ।

४--व्याकरण-सम्बन्धी

(८) वाक्य विश्लेषण कीजिए :----

दवा का कटोरा वह राजा को देना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि दीवार पर टँगे हुए श्लोक पर जा पड़ी ।

५--रचना-सम्बन्धी

(९) भारवि का जीवन-परिचय संक्षेप में लिखिए ।

---:०:---

भरत परिचय

श्री जयशङ्कर प्रसाद

[श्री जयशङ्कर प्रसाद हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और उपन्यासकार थे। उनका जन्म काशी में माघ शुक्ल दशमी, सं० १९४६ को हुआ था। उनकी शिक्षा प्राय: घर पर हुई। वह अपने देश के प्राचीन वैभव से अधिक प्रभावित थे। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया और उसी पर उनकी रचनाएँ आधारित थीं। हिन्दी में वह प्रेम और करुणा के कवि माने जाते हैं। उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ द्विवेदी युग में हुआ था, पर उस युग से उन्होंने विशेष प्रेरणा ग्रहण नहीं की। वह अपने पथ के स्वयं निर्माता थे। उन्होंने हिन्दी-काव्य में नवीन विषयों का सन्निवेश किया और उन्हें नयी शैली दी। प्रस्तुत कविता से उनकी काव्य-शक्ति और उनकी प्रतिभा का यथेष्ट परिचय मिलता है। इसमें महाराज दुष्यन्त के पुत्र भरत का परिचय है।]

[१]

हिमगिरि का उत्तुङ्ग शृंग है सामने।
खड़ा बताता है भारत के गर्व को॥
पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की।
मणिमय हो जाता है नवल-प्रभात में॥

[२]

बनती है हिमलता कुसुममणि के खिले।
पारिजात का ही पराग शुचि धूल है॥

सांसारिक सब ताप नहीं इस भूमि में।
सूर्य-ताप भी सदा सुखद होता यहाँ॥

[३]

हिम-सर में भी खिले विमल अरविन्द हैं।
कहीं नहीं है शोच, कहाँ सङ्कोच है॥
चन्द्र-प्रभा में भी गलकर बनते नदी।
चन्द्रकान्त से ये हिमखण्ड मनोज्ञ हैं॥

[४]

फैली हैं ये लता लटकती शृङ्ग में।
जटा समान तपस्वी हिमगिरी की बनी॥
कानन इसके स्वादु फलों से हैं भरे।
सदा अयाचित देते हैं फल प्रेम से॥

[५]

इसकी कैसी राज्य विशाल अधित्यका
है, जिसके समीप ऋषि का आश्रम बना।
अहा! खेलता कौन यहाँ शिशु-सिंह से;
आर्य्य-वृन्द के सुन्दर सुखमय भाग्य सा॥

[६]

कहता है उसको लेकर निज गोद में--
"खोल खोल मुख, सिंह-बाल! मैं देख कर--
गिन लूँगा तेरे दाँतों को हैं भले।
देखूँ तो कैसे यह कुटिल कठोर हैं!!"

[७]

देख वीर बालक के इस औद्धत्य को।
लगी गरजने भरी सिंहनी क्रोध से॥
छड़ी तान बोला सरोष शिशु यों तभी--
"बाधा देगी क्रीड़ा में यदि तू कहीं--

[८]

मार खायेगी, और तुझे दूँगा नहीं--
इस बच्चे को कभी, अरी तू भाग जा!
अहा! कौन यह वीर बाल निर्भीक है?
कहीं, वृद्ध भारतवासी! हो जानते?

[९]

नहीं नहीं, तुम भय देते शिशु को सदा--
'गो' 'गो' कह कर तुम क्या जानो भूलते।
यही 'भरत' वह बालक है जिस नाम से--
'भारत' संज्ञा पड़ी इसी वीर भूमि की॥

[१०]

कश्यप से शिक्षा पा कर सब वेद की;
आश्रम में पल कर, कानन में घूम कर;
निज माता की गोद स्वच्छ भरता रहा;
जो पति से भी बिछुड़ रही दुर्दैव-वश॥

[११]

जङ्गल के शिशु-सिंह सभी सहचर रहे ।
रहा घूमता हो निर्भीक प्रवीर वह ।।
जिसने अपने बलशाली भुजदण्ड से ।
'भारत का साम्राज्य' प्रथम स्थापित किया ।।

[१२]

यवन अनार्य्य और शक, हूण, किरात का—
जिसने करके विजय, राज्य-श्री को लिया ।।
वही वीर, यह है आत्मज दुष्यन्त का ।
भारत का शिर-रत्न, 'भरत' ही नाम है ।।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—उत्तुङ्ग, भृङ्ग, नवल, कुसुम, मनोज्ञ, चन्द्रकान्त, अधित्यका औद्धत्य, दुर्दैव, आत्मज, शिर-रत्न और कानन ।
(२) पर्यायवाची बताइए—अरविन्द, वन, भूमि, कुसुम, और भृङ्ग ।
(३) विपरीतार्थक बताइए—शुचि, सुखद और निर्भीक ।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) भरत के विषय में आप क्या जानते हैं ?
(५) हमारे देश का नाम भारत क्यों पड़ा ?
(६) ऋषि के आश्रम की शोभा बढ़ानेवाली कौन-सी वस्तुएँ हैं ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) तीसरे और पाँचवें छन्दों का भावार्थ लिखिए।

४—रचना-सम्बन्धी

(८) दुष्यन्त और शकुन्तला का आख्यान लिखिए।

द्रोह का प्रायश्चित

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

[पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" का जन्म अम्बाला छावनी में सं० १९४८ में हुआ था। फारसी, उर्दू और हिन्दी के वह अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी में उनकी कहानियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत कहानी में उन्होंने राणा प्रतापसिंह और शक्तिसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना को आधार मान कर हमें अत्यन्त सुन्दर शिक्षा दी है।]

"मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।"

"चुप रहो.....तुम क्या जानो।"

"इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।"

"बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शान्त होगी।"

शक्तिसिंह ने एक लम्बी साँस निकालते हुए अपनी पत्नी की ओर देखा।

"कलंक लगेगा, अपराध होगा"....स्त्री ने कहा।

"अपमान का बदला लूँगा, प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूँगा। आज विजयी हो जाऊँगा।" बड़ी दृढ़ता से कह कर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार से देखा। मुगल सेना के चतुर सिपाही अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे, धूल उड़ रही थी, बड़े साहस से सब एक दूसरे में उत्साह भर रहे थे।

"निश्चय महाराणा की हार होगी। बाईस हज़ार राजपूतों को क्षण भर में मुगल सेना काट कर सूखे डण्ठल की भाँति गिरा देगी।" साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

"भाई पर क्रोध करके, देशद्रोही बनोगे ?" कहते-कहते उस राजपूत-बाला की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

शक्तिसिंह अपराधी के समान विचार करने लगा। जलन का उन्माद उसकी नस-नस में दौड़ रहा था। प्रताप के प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी, मूर्ख हृदय किसी प्रकार न माना। इसे कौन समझा सकता था।

रणभेरी बजी !

कोलाहल मचा, मुगल सैनिक मैदान में एकत्र होने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा।

बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगीं।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़ कर कहा—आज अन्तिम निर्णय है, मरूँगा या मार कर ही लौटूँगा।

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।

[२]

सेना एक महत्त्वपूर्ण अभिमान को विध्वंस करने के लिए तैयार थी। प्रकृति काँप उठी। घोड़ों और हाथियों की चीत्कार से आकाश थरथरा उठा, बरसाती हवा के थपेड़ों से जङ्गल के वृक्ष रणनाद करते हुए झूम रहे थे। पशु-पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे। बड़ा विकट समय था। उस भयानक मैदान में राजपूत सेना मोर्चाबन्दी कर रही थी। हल्दीघाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त हो खड़े थे।

"महाराणा की जय"....शैल-माला से टकराती हुई ध्वनि मुगल सेनाओं में घुस पड़ी। युद्ध आरम्भ हुआ। भैरवी रणचण्डी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंसक जन्तुओं की भाँति अपने-अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिकों के निर्भय घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं, पर्वत शिखरों पर से विषैले बाण मुगल सेना पर बरसने लगे। सूखी हल्दीघाटी में रक्त की धारा बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रु सेना का व्यूह टूट कर तितर-बितर हो गया। दोनों ओर से सैनिक कट कट-कर गिरने लगे। देखते-देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे वादलों को लेकर आँधी आयी। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुगलों की सेना में नवीन उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धाँय-धाँय करती हुई बन्दूक से निकली गोलियाँ दौड़ रही थीं...ओह! जीवन कितना सस्ता हो गया था। महाराणा शत्रु सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। प्राण का दाँव लगा था। सब ओर से घिरे थे। आक्रमण पर आक्रमण हो रहा था। प्राण सङ्कट में पड़ गये। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर नहीं उखड़े। मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था?

मानसिंह की कुमन्त्रणा सिद्ध होने वाली थी। ऐसे आपत्तिकाल में वह वीर मन्ना सरदार सेना सहित वहाँ कैसे आया? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा। वीर मन्ना जी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राज-चिह्नों को उतार कर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—'यह क्या?' 'आज मरने के समय एक बार राजचिह्न धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है'—हँस कर मन्नाजी ने कहा।

राणा ने उन्मादपूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुगलों की सेना में शक्तिसिंह उस चातुरी को समझ गया।

उसने देखा कि घायल प्रताप रणक्षेत्र से जीते-जागते निकले जा रहे हैं और मन्ना को प्रताप समझ कर मुगल उधर टूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुगल सरदारों के साथ महाराणा के पीछे-पीछे शक्ति-सिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

[३]

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटनेवाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाईस हजार राजपूतों में से केवल आठ हजार बच गये थे।

शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चला जा रहा था। मार्ग में लाशें कटी पड़ी थीं। कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं। कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं रक्त-प्लावित मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है ! दो घड़ियों में हँसते, बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये। ऐसे नीरीह जीवन पर ऐसा गर्व ! शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला उठीं।

'ये सभी राजपूत थे, मेरी ही जाति के रक्त थे। हाय रे मैं ! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ, क्या सचमुच पूरा हुआ ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था अधम शक्ति ! यह तेरे चिरकलङ्क के लिए पैशाचिक आयोजन था। भला पागल, तू प्रताप से बदला लेना चाहता था। उस प्रताप से जो अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्मभूमि की मर्यादा बनाने चला था, वह जन्म-भूमि, जिसके अन्न-जल से तेरी नसें भी फूली-फली हैं। अब भी माँ की मर्यादा का ध्यान कर।'

सहसा धाँय-धाँय गोलियों का शब्द हुआ। चौंक कर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुगल सरदार प्रताप का पीछा कर रहे हैं। महाराणा का घोड़ा अस्त-व्यस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्ति-सिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई....'रुको।'

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी। पलक मारते दोनों मुगल सरदार जहाँ के तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँखें चढ़ा कर देखा। वे आँखें पूछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के रक्त से तुम्हारी हिंसा पूर्ण नहीं हुई ! किन्तु यह क्या, शक्ति-सिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—'नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना सिर चढ़ा कर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ।'

राणा ने अपनी दोनों बाहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये। दोनों की आँखें आपस में स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय

गद्‌गद् हो गये। इस शुभ मुहूर्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प-वर्षा की। नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने डबडबाई हुई आँखों से देखा...उनका चिर सहचर प्यारा चेतक दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा है।

शक्तिसिंह ने कहा—"भैया! अब आप विलम्ब न करें। घोड़ा तैयार है।"

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

[४]

श्रावण का महीना था।

दिन भर की मार-काट के पश्चात्, रात्रि बड़ी सुनसान हो गयी थी। शिविर से महिलाओं के रुदन की करुण ध्वनि हृदय को हिला देती थी। सहस्रों सुहागिनियों के सुहाग उजड़ गये थे। उन्हें कोई ढाढ़स बँधानेवाला न था। था तो केवल हाहाकार। कष्टों का अनन्त पारावार।

शक्तिसिंह अभी तक शिविर में नहीं आया था। उसकी पत्नी भी प्रतीक्षा में विकल थी, उसके हृदय में जीवन की आशा-निराशा क्षण-क्षण उठती-गिरती थी।

अँधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे। एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया। पत्नी ने कौतूहल से देखा। उसके वस्त्र रक्त-प्लावित थे।

"प्रिये!"

"नाथ!"

'तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई। मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया; किन्तु इससे मुझे सुख है, क्योंकि मैंने चिर द्रोह का प्रायश्चित्त कर लिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—शिविर, उन्माद, रणभेरी, विध्वन्स, व्यूह, चीत्कार, कुमंत्रणा, प्लावित, प्रतिशोध, स्वर्गादपि, प्रक्षालन, रक्त-प्लावित।

(२) पर्यायवाची बताइए--गर्व, शत्रु, पारावार ।

२–विषय-सम्बन्धी

(३) शक्तिसिंह और राणा प्रताप के बीच शत्रुता का क्या कारण था ?

(४) 'द्रोह का प्रायश्चित' शीर्षक की उपयुक्तता सिद्ध कीजिए ।

(५) 'शक्तसिंह की कुमंत्रणा सिद्ध होनेवाली थी' इसके द्वारा कहानीकार ने किस घटना की ओर संकेत किया है ?

३–भावार्थ-सम्बन्धी

(६) प्रकृति काँप उठी, सूखी हल्दीघाटी में रक्त की धारा बहने लगी, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था--के भाव स्पष्ट कीजिये ।

४–व्याकरण-सम्बन्धी

(७) 'राजा ने उन्मादपूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा'--का विश्लेषण कीजिए ।

(८) देशद्रोही में कौन-सा समास है ?

५–रचना-सम्बन्धी

(९) हार और पद को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त कीजिये ।

(१०) भुजाएँ फड़कना, आँख से चिनगारियाँ निकलना, गद्‌गद् हो जाना, फूट-फूट कर रोना मुहावरों को अपने वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए ।

---:o:---

: ३६ :

रेडियो का पंचायत-घर

[हमारे देश में रेडियो का प्रचार बढ़ रहा है। इससे हमारा मनोरञ्जन तो होता ही है, साथ ही हमें घर बैठे समाचार भी सुनने को मिल जाते हैं। आजकल इसके द्वारा शिक्षा का भी आयोजन किया जा रहा है। रेडियो का आविष्कार किसने किया, उसके द्वारा समाचार किस प्रकार प्रसारित किए जाते हैं, हमारे जीवन में उसकी क्या उपयोगिता है, उसका पंचायत-घर क्या है?—आदि बातों के सम्बन्ध में यहाँ बहुत कुछ बताया गया है।]

संसार प्रगतिशील है। हर समय इसमें कुछ न कुछ परिवर्तन होता ही रहता है। मनुष्य की रुचि नयी वस्तुओं का पता लगाने, अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने, मनोरञ्जन के साधनों में परिवर्तन कर उनको और अधिक उपयोगी बनाने तथा व्यक्तिगत और अन्य प्रकार के समाजोपयोगी कार्यों में सदैव क्रियाशील रहती है।

टेलीफोन और टेलीग्राम के आविष्कार के पूर्व कौन कह सकता था कि मनुष्य हजारों मील दूर तार की सहायता से अपना समाचार भेज सकेगा तथा अपने प्रियजनों से बात कर सकेगा? पर टेलीफोन और टेलीग्राम का आविष्कार हुआ और लोग ऐसा करने में समर्थ हो सके। फिर भी टेलीफोन के प्रचार में कई त्रुटियाँ रह गयी थीं। सुदूरस्थ देशों तक लट्ठे गाड़ कर तार लगाना अत्यन्त कठिन था। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए मनुष्य ने प्रयोग करना आरम्भ किया और शीघ्र ही बिना तार के ही एक स्थान पर बैठ कर लाखों मील दूर आसानी से समाचार भेजने में सफल हो सका।

वैसे तो बिना तार की सहायता से समाचार भेजने में किसी अंश तक और लोगों ने भी सफलता प्राप्त की थी, पर इसकी पूर्ति इटली के एक

प्रसिद्ध व्यक्ति 'मारकोनी' ने हर्ट्ज़ नामक एक जर्मन वैज्ञानिक की खोज की सहायता के आधार पर की। हर्ट्ज़ ने यह पता लगाया कि शब्द-कम्प को बिजली की लहरों में परिणत कर, ईथर द्वारा विना तार लगाये भी, अति तीव्र गति से समाचार एक जगह से दूसरी जगह भेजे जा सकते हैं।

मारकोनी ने शब्दों को शब्द-कम्पों में विद्युत् द्वारा परिणत कर भेजने और पुनः शब्दों में परिणत कर यंत्र तैयार करने में सफलता प्राप्त कर अपने नाम को अमर किया। उसने शब्द-कम्पों को एक जगह से दूसरी जगह भेजने और उन्हें फिर शब्दों में परिणत करने के लिए दो यंत्र बनाये। उसने जिस यंत्र से समाचार भेजा उसका नाम 'ट्रांसमीटर' रखा और जिस यंत्र द्वारा उन विद्युत् शब्द-कम्पों को फिर ध्वनि में परिणत किया उसका नाम 'रेडियो' रखा। यही दूसरा यंत्र अर्थात् रेडियो आजकल लोकप्रिय हो रहा है।

रेडियो के आविष्कार से मनोरंजन के नये-नये साधन की ही खोज नहीं
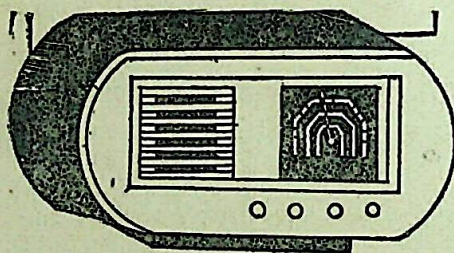
हुई, वरन् विदेशी तथा भारतीय जीवन की सच्ची झलक, नाना प्रकार के कलाओं के रूपों का परिचय, यातायात, राजनीतिक एवं औद्योगिक बातों की जानकारी साधारण शिक्षित तथा अशिक्षित जनता के लिए सुगम हो गयी है। उसकी दिन-प्रति-दिन वृद्धि होते देख कर एक बार राष्ट्रपिता बापू ने कहा था कि यह एक आश्चर्यजनक वस्तु है। इसमें मैं ईश्वर की सत्ता और शक्ति पाता हूँ। बात भी कुछ ऐसी ही है और इसलिए भारत में इसका प्रचार आशा से अधिक हो रहा है। पहले इसका प्रचार केवल अंग्रेजी पढ़ी-लिखी जनता तक ही सीमित था, और ग्रामीण जनता इसकी ओर शंकित नेत्रों से देखती थी। पहले के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि

सन् १९२७ ई० में समस्त भारत में कुल ३६०० रेडियो थे, पर इस समय तो ३ लाख से भी अधिक रेडियो लाइसेन्स हैं और श्रोताओं के मनोरंजन के लिए भारत में दिल्ली, वम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, इलाहावाद मद्रास, त्रिचनापल्ली, नागपुर, शिलांग, गौहाटी, जालन्धर, अमृतसर, कटक आदि रेडियो-केन्द्र काम कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त कश्मीर आदि बड़े-बड़े राज्यों में भी नये-नये केन्द्र खोले गये हैं। इस प्रकार अब ऐसा कोई प्रान्त नहीं है जहाँ रेडियो-केन्द्र का जनता के लिए अभाव हो। ये केन्द्र अपने प्रान्त के लिए विशेष रूप से अपनी ही भाषा में विभिन्न प्रकार के आयोजन करते रहते हैं। नये आयोजनों में पंचायत-घरों का विशेष स्थान है।

हमारी भाषा और संस्कृति का प्राचीन रूप गाँवों में ही सुरक्षित है। भारतीय रहन-सहन, खान-पान, पहनावे सम्बन्धी आदि वातों के परिचय का प्रयत्न पंचायत-घर के कार्य-क्रम के द्वारा किया जाता है। पंचायत-घर का कार्यक्रम उन ग्रामीण तथा अशिक्षित-जन-समूह के लिए है, जिनको अपने वास्तविक स्वरूप के महत्त्व का स्वयं भी ज्ञान नहीं रहता। गाँवों में वसनेवाली जनता नागरिकों की अपेक्षा अधिक विशाल है। उसकी समस्याएँ अपना एक विशेष महत्त्व रखती हैं। उद्योग-धन्धों में लगे हुए कृषकों के लिए उनकी खेती, सिंचाई, जलवायु आदि सम्बन्धी वातों की उपयोगिता को कौन अस्वीकार कर सकता है।

नागरिकों की अपेक्षा कृषकों के जीवन में एक और सन्तोष की भावना देखने को मिलती है। दिन भर के लगातार परिश्रम के पश्चात् चौपालों में निकट वैठे हुए, अपने जीवन का एक चित्र रेडियो के इस कार्यक्रम में उसी स्वरूप में पाकर, वे और भी अधिक मग्न हो जाते हैं। पंचायत-घर का सारा कार्यक्रम यथासम्भव ग्रामीण भाषा में रहता है। वही स्वाभाविक वोली, वही भोलापन, वही मिठास, विचारों के आदान-प्रदान की वही सरल रीति आदि से अन्त तक प्रत्येक आयोजन में वर्तमान रहती है। इससे एक बार ग्रामीण ही नहीं, शिक्षित समाज भी प्रकृति की गोद में स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगता है। नृत्य और गाने भी प्रायः

ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित होते हैं और वे समान रूप से सबका मनो-रञ्जन करते हैं।

गाँवों की अशिक्षित जनता के लिए शिक्षा सम्बन्धी उपयोगी बातों का भी विशेष महत्त्व है। पंचायत-घर में विशेष अवसरों पर इन विषयों के विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यानादि का आयोजन होता है, जिसका प्रभाव ग्रामीण जन-समूह पर समान रूप से पड़ता है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक कारबार की उपयोगिता उनके हृदय में इसके द्वारा अङ्कित हो जाती है। विशेष अवसरों पर उन्हें नागरिक जीवन तथा शास्त्रीय संगीत आदि का भी परिचय दिया जाता है। बच्चों और स्त्रियों का कार्यक्रम तो उनके लिए बहुत ही उपयोगी तथा मनोरञ्जक होता है।

पनघट पर ग्रामीण जीवन की हिलोरें उठती हैं। पंचायत-घर के कार्यक्रम में पनघट का आयोजन वहाँ के स्त्री-समाज की अच्छी झलक देता है। उनके मनोविनोद की परख उसी से होती है। बातचीत की सादगी, भोलापन, देवी-देवताओं में अटल विश्वास, शारीरिक शक्ति के महत्त्व आदि सम्बन्धी बातें भी इनसे जानी जाती हैं, तथा पशुपालन की समस्या भी ग्रामीणों के लिए कम महत्त्व की नहीं है। इस दृष्टि से पाकशास्त्र सम्बन्धी बातों पर प्रकाश डालना भी इसका एक मुख्य कार्यक्रम है। बहुत कम ऐसे अवसर मिलते हैं जब नागरिक तथा ग्रामीण जन-समाज का सम्मेलन हो सके। रेडियो का पंचायत-घर इसका एक उत्तम साधन है। गाँवों तथा नगरों की दूरी को दूर करने का यह सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। पंचायत-घर गाँवों की जनता को शिक्षित बनाने, सभी प्रकार की आधुनिकतम समस्याओं से परिचित कराने तथा उनमें देश-प्रेम की भावना को भरने में विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—आविष्कार, सुदूरस्थ, समाजोपयोगी, परिच... यातायात, लाइसेंस, सचिवालय और औद्योगिक।

(२) पर्यायवाची बताइए---विशाल, समस्त, और दिन ।
(३) 'सचिवालय' से आप क्या समझते हैं ?

२--विषय-सम्बन्धी

(४) रेडियो का आविष्कार कब और किसने किया ?
(५) रेडियो का पंचायत-घर क्या है ?
(६) पंचायत-घर से कौन-कौन से विषय प्रसारित होते हैं ।

३--भावार्थ-सम्बन्धी

[अ] पनघट पर ग्रामीण जीवन.....एक उत्तम साधन है ।
[ब] हमारी भाषा और संस्कृति...अस्वीकार कर सकता है ।

--व्याकरण-सम्बन्धी

(७) विशेषण बनाइए---नगर, ग्राम, संस्कृति, उद्योग, शरीर, स्वर्ग और दिन ।
(८) समास स-विग्रह बताइए---पंचायत-घर, कार्यक्रम और राष्ट्रपिता।

५--रचना-सम्बन्धी

(९) रेडियो की उपयोगिता पर एक निबन्ध लिखिए ।

---: ० :---

तुलसी-दल

[गोस्वामी तुलसीदास का जन्म कब और कहाँ हुआ—यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग उनका जन्मस्थान सोरों, जिला एटा और कुछ लोग राजापुर, जिला बाँदा बताते हैं। श्रावण कृष्ण ३ सं० १६८० को काशी में उनका स्वर्गवास हुआ। वह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि और भगवान् राम के अनन्य भक्त थे। कवि और भक्त होने के अतिरिक्त वह एक सुधारक और मर्यादा के प्रतिष्ठापक थे। उन्होंने साहित्य और समाज में प्रचलित विभिन्न प्रवृत्तियों का अपने काव्य में एक अभूतपूर्व समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की। उस दृष्टि से 'रामचरित मानस' उनका श्रेष्ठतम काव्य है। इसके अतिरिक्त कवितावली, दोहावली, विनयपत्रिका, आदि भी उनके ग्रन्थ हैं। यहाँ उनकी रचनाओं के उदाहरण दिये जाते हैं। इन रचनाओं में उनकी भाषा अवधी है।]

केवट की राम भक्ति

रथ हाँकेउ हय राम तन, हेरि-हेरि हिहिनाँहि।
देखि निषाद विषाद बस, धुनहिं सीस, पछिताँहि॥१॥

जासु बियोग विकल पसु ऐसे।
प्रजा मातु पितु जीयहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंतु पठाये।
सुरसरि तीर आपु तब आये॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी
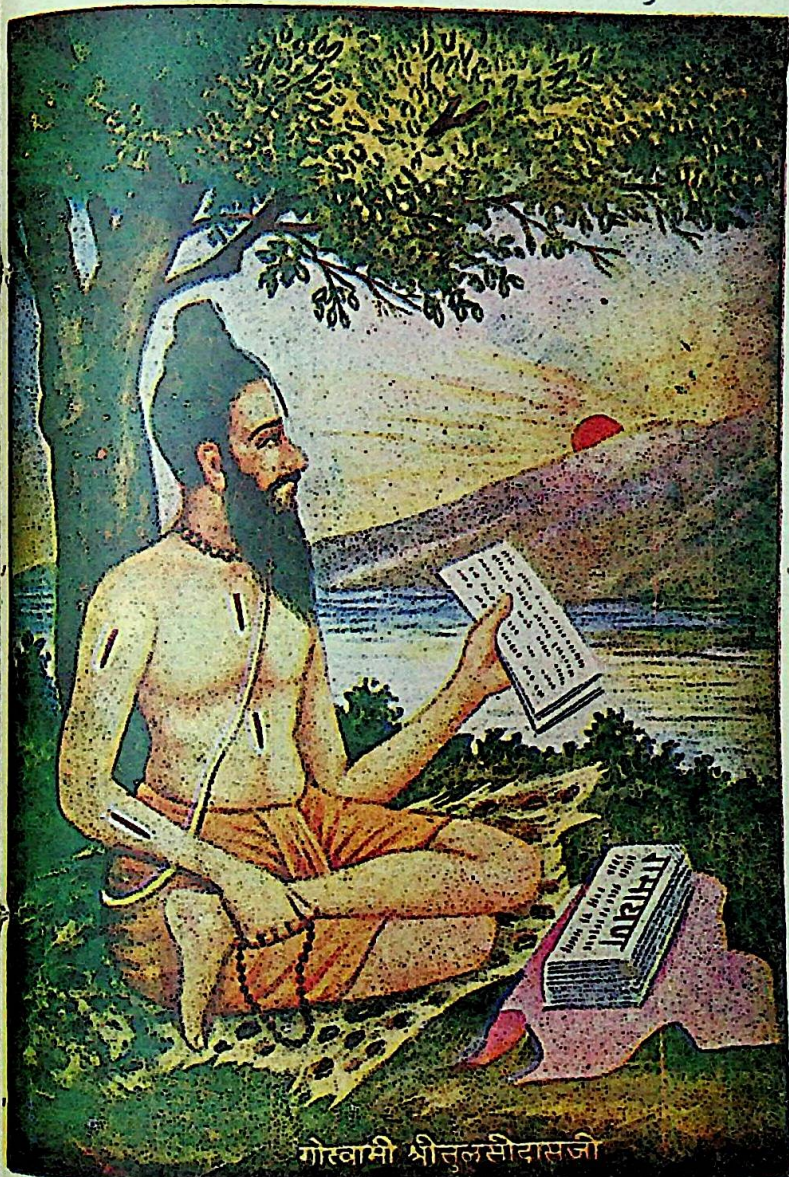
माँगी नाव न केवट आना ।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन-कमल-रज कहुँ सबु कहई ।
मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई ।
पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिऊँ मुनि-घरनी होइ जाई ।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
एहि प्रतिपालौं सब परिवारू ।
नहिं जानौं कछु और कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू ।
मोहि पदपदुम पखारन कहहू ॥
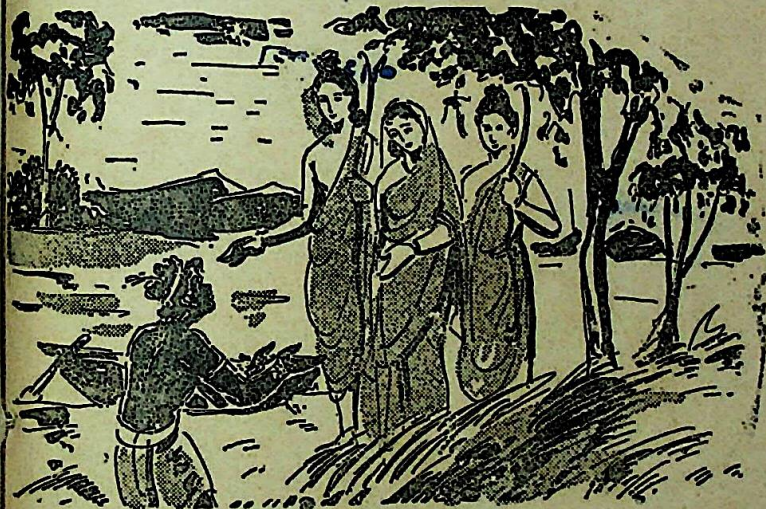
सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी लखन-तन ॥२॥
कृपासिन्धु बोले मुसुकाई ।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥

बेगि आनु जल पाय पखारू ।
होत बिलम्बु उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा ।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा ।
जेहि जगु किय तिहुँ पग ते थोरा ॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी ।
सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा ।
पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा ।
चरन-सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं ।
एहि सम पुन्यपुञ्ज कोउ नाहीं ॥
पद पखारि जलुपान करि, आप सहित परिवार ।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार ॥३॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता ।
सिय रामु गुह लखन-समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा ।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी ।
मनि मुंदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहि उतराई ।
केवट चरन गहेउ अकुलाई ॥
नाथ आजु मैं काह न पावा ।
मिटे दोष - दुख - दारिद - दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी ।
आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी ॥

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे ।
दीनदयाल अनुग्रह तोरे ।।
फिरती बार मोहि जोइ देवा ।
सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा ।।
बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवटु लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ।।४।।

अवधेस के बालक

[१]

अवधेस के द्वारे सकारे गयी, सुत गोद कै भूपति लै निकसे,
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से;
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन-जातक से,
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ।।

[२]

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिए,
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिए;
अरबिंद सो आनन रूपमरंद अनंदित लोचन-भृङ्ग पिए,
मन मो न बस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिए ।।

[३]

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं,
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं;
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं,
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन मन्दिर में बिहरैं ।।

[४]

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं,
कबहूँ करताल बजाई के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं;
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं,
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन मन्दिर में बिहरैं ।।

[५]

वर दन्त की पंगति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की,
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की;
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की,
निवछावरि प्रान करैं 'तुलसी' बलि जाऊँ लला इन बोलन की।

--: ० :--

भक्ति के पद

[१]

बैठी सगुन मनावती माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुर बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहों।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लषन उर लैहों॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोला पायँ परि पूछति प्रेम-मगन मृदु-बानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ँ समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

[२]

ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सब ी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो सम्पति दस सीस अरपि करि, रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो सम्पदा बिभीषन कहँ अति, सकुच-सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन, करहिं कृपानिधि तेरो॥

--:०:--

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बता ए––विकल, रज, सुरसरि, मरमु, अहई, पखारु, निहोरा, रजायसु, दारिद, दावा, स्कारे, फुर, खंजन, अमोलन, गनक और सकुच।

(२) तत्सम बताइए––जोग, विराग, दारिद, मनिमाल, सिय, भगति और पुञ्ज।

(३) पर्यायवाची बताइए––दामिनी, मन्दिर, नित्य, सुरसरि और दससीस।

२–विषय-सम्बन्धी

(४) केवट के चरित्र की विशेषता बताइए।

(५) 'छुअत सिला भई नारि सुहाई'––में नारि से किसकी ओर संकेत है ?

(६) 'जो संपति दस सीस अरपि कर रावन सिव पहँ लीन्हीं'––इस कथन में किस कथा से तात्पर्य है ?

(७) गीध और शबरी की कथा बताइए।

३–व्याकरण-सम्बन्धी

(८) 'नाथ आज मैं काह न पावा' में किस भाव की व्यञ्जना की गयी है ?

(९) प्रथम पद में गोस्वामीजो ` किस परिस्थिति का चित्रण किया है ?

(१०) राम की उदारता के कौन-कौन प्रमाण द्वि ीय पद में मिलते हैं ?

४–रचना-सम्बन्धी

(११) राम के बाल-रूप में किन-किन विशेषताओं का समावेश किया गया है ?

(१२) 'तुलसीदास की राम-भक्ति' के सम्बन्ध में एक लेख लिखिए।

––:०:––

: ३८ :

मुझसे सब अच्छे

श्री घनश्यामदास बिड़ला

[श्री घनश्यामदास बिड़ला हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। वह साहित्यकार हैं। साहित्य उनकी ज्ञान-पिपासा का साधन है। मौज आने पर ही वह लिखते हैं। उनकी शैली बहुत आकर्षक और है। वह जो कुछ कहना चाहते हैं उसे शीघ्र ही पाठक के हृदय में देते हैं। उनकी प्रस्तुत कहानी मनोरंजक और अत्यन्त शिक्षाप्रद है।]

मुझे सवेरे टहलने की आदत है। प्रातःकाल की शुद्ध हवा को जीवन देती है। जब-जब मैं घर रहता हूँ, सवेरे का भ्रमण प्रकार का नियम-सा हो गया है। एक दिन प्रातः टहलने निकला वायु की परोपकार वृत्ति पर विचार करने लगा।

पश्चिमी हवा चल रही थी। मैंने सोचा, यह वायु कितने के बाद यहाँ पहुँची होगी? कहाँ से चली, कितना उपकार किया, अनुमान कौन लगाये? भारत का पश्चिमी सागर यहाँ से लगभग सौ मील की दूरी पर होगा, उसके आगे अफ्रीका तक केवल निर्जन ही समुद्र है। सम्भवतः उनसे भी पश्चिम और पश्चिमोत्तर के प्रदे पहाड़ियों, नदियों, समुद्रों, मनुष्यों, जीव-जन्तुओं को जीवन देती हुई कर्त्तव्य-पालन के लिए, शान्त भाव से पूर्व प्रदेशों की ओर अग्रसर होगी।

मैंने सोचा—यह हवा कितनी सेवा करती है, फिर भी अखबारों इसकी चर्चा क्यों नहीं आती। हवा से मैंने कहा—हवा! तुम संसार इतना उपकार करती हो, किन्तु तुम्हारी सेवा की खबर मैं कभी

पड़ता। तुमको चाहिए कि जो थोड़ी-सी वात करो, उसको चढ़ा-बढ़ाकर अखवारों में छपा दिया करो।
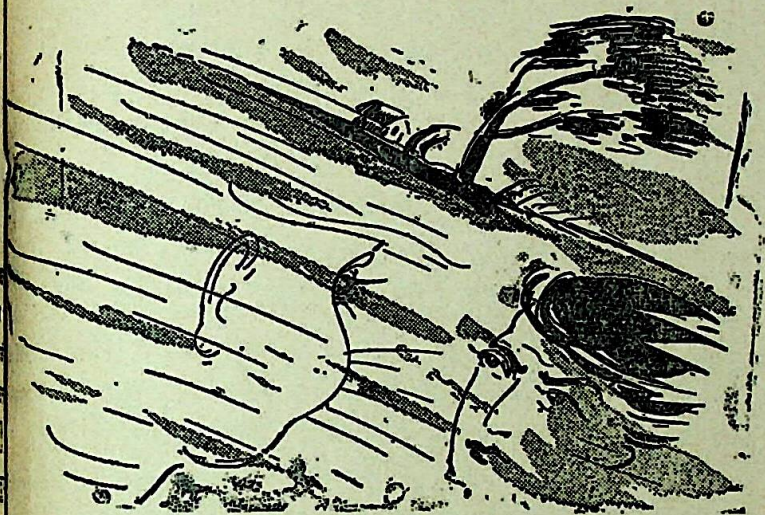
हवा ने कहा—कौन-सा अखवार अच्छा है ?

मैंने कहा—हिन्दी-अंग्रेजी के वहुत-से अखवार हैं, सभी में अपनी प्रशंसा छपाया करो।

हवा ने कहा—सूर्यलोक और चन्द्रलोक में भी तुम्हारे यहाँ के अखवार जाते हैं ?

मैंने कहा—वहाँ तो नहीं जाते।

हवा को मेरी मूर्खता पर हँसी आ गयी। उसने कहा—तुम पक्के कूपमण्डूप हो। तुम्हारे लिए थोड़े-से लोग ही ब्रह्माण्ड हैं। मैंने तो प्राणिमात्र की सेवा का व्रत ले रखा है और मेरा अखवार है ईश्वर का हृदय। वहाँ सव खवरें आप-से-आप पहुँच जाती हैं। भली-वुरी सभी वातें वहाँ छपती रहती हैं, किसी वात का वहाँ पक्षपात नहीं। किसी के कहने से वहाँ कोई खबर नहीं छापी जाती, सच्ची खवरें वहाँ स्वयं छप जाती हैं। मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं कि विज्ञापनवाजी के दल-दल में फँस जाऊँ। निःस्वार्थ भाव से चुपचाप प्राणिमात्र की सेवा करना, यही

मेरा धर्म और मेरे स्वामी को भी यही प्रिय है। अच्छा हो कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।

हवा की यह साफ़ और सच्ची बात मुझे बुरी लगी। मैं, और हवा जैसी जड़ वस्तु का अनुकरण करूँ? मन में आया कि एक व्याख्यान ही झाड़ दूँ। अखबारों में तो उसका अतिरञ्जित वर्णन छप ही जायेगा। परन्तु पवन को तो 'लगन लगी पद पावन की', उसे मेरा व्याख्यान सुनने को अवकाश कहाँ? वह तो गाती हुई शीघ्रता से चल निकली।

तब मैंने अपना क्रोध एक ऊँट पर प्रदर्शित किया। बात यह हुई कि रास्ते में एक ऊँट महाशय, अपनी थकान उतारने के लिए हाथ-पाँव पीट-पीट कर धूल उछाल रहे थे। मैंने गर्मी से तङ्ग आकर क्रोध में ऊँट से
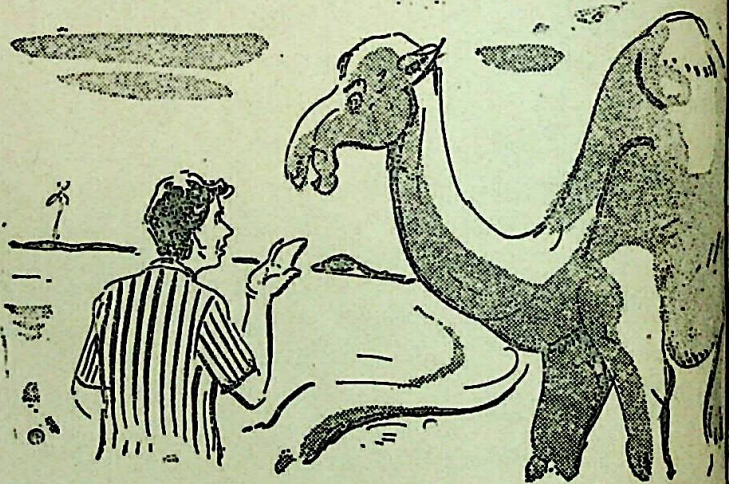
कहा—तुम बड़े गँवार हो। पशु तो हो ही, किन्तु तुम्हें तमीज भी बिल्कुल नहीं है। हम लोग जिन रास्तों से होकर निकलते हैं उनमें गरीब मनुष्य भी किनारे खड़े होकर झुक कर प्रणाम करते हैं। हम जब-जब टहलने जाते हैं, तब-तब हमारे लट्ठधारी नौकर रास्ते में चलनेवालों के नाकों दम कर देते हैं। तुमने हमें झुक कर प्रणाम करना तो दूर रहा, उलटा हम पर धूल उछालना शुरू कर दिया। इससे मालूम होता है कि तुम गँवार भी हो और दुष्ट भी।

इस पर ऊँट ने व्यायाम तो बन्द कर दिया, पर मेरी बात पर वह खिलखिला कर हँस पड़ा। वह बोला—तुम मूर्ख तो हो ही, साथ ही अभिमानी भी हो। अभी-अभी तुम पवन को उपदेश देने की धृष्टता कर रहे थे। पवन आदर्श सेवक है, उसने तुमसे कुछ नहीं कहा। कहीं मुझे उपदेश देने की धृष्टता न कर बैठना, बस यह समझ लो कि मुझसे तुम बहुत गये-बीते हो।

मैंने कहा—ऊँट! तू पशु हो कर मनुष्य को उपदेश देने चला है। मुझे तेरी बुद्धि पर तरस आता है।

ऊँट की मुखाकृति गम्भीर हो उठी। आंखों में तेज चमकने लगा। अपने नथुनों को फटकार कर उसने कहा—क्या केवल मनुष्य देह मिलने से ही मनुष्य अपने को मनुष्य कहने का अधिकारी होता है? और उसे मनुष्य-देह मिल गयी; इस बूते पर क्या वह अपने को हम पशुओं से ऊँचा समझ सकते हैं? यदि तुम ऐसा मानते हो तो तुम्हारी बुद्धि को शत बार धिक्कार है।

मैं कुछ टेढ़ा पड़ गया। मैंने कहा—भाई ऊँट, अपने लिए तो मैं कह सकता हूँ कि अपनी समझ से मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ।

ऊँट फिर हँस पड़ा। कहने लगा—अच्छा, जरा बता दो तुममें मुझसे कौन-सी अच्छी बातें है? मैं सोचने लगा, क्या बताऊँ? आखिर धन के सिवा मुझमें कौन-सी बात है, जिसका मैं गर्व कर सकूँ। अत्यन्त साहस करके मैंने दबी जबान से कहा—अच्छा तो देखो, तुम जानते हो मैं त्याग से कितना प्रेम करता हूँ। सादगी से रहता हूँ, खादी पहनता हूँ। यह क्या कुछ कम है?

ऊँट ने गर्व के साथ कहा—इसमें गर्व करने की क्या बात है? मुझे देखो, मैं तो कुछ नहीं पहनता।

मैंने कहा—और सुनो, मैं भोजन भी सादा करता हूँ। मिर्च-मसाले कुछ नहीं खाता।

ऊँट ने कहा—अच्छा त्याग किया। मुझे तो देखो कि केवल सूखी पत्तियाँ चबा कर ही रह जाता हूँ।

मैंने कहा—मैंने गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दिया है।

ऊँट ने कहा—क्यों इतना अभिमान करते हो ? मैंने तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही नहीं किया, मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूँ।

मैंने कहा—मुझमें ईर्ष्या-द्वेष अधिक नहीं, झूठ बहुत कम बोलता हूँ सो भी अनजान में। रोष भी कम करता हूँ।

ऊँट ने कहा—इसका नमूना तो हम रोज देखते हैं। कल एक पीला बछड़ा रो रहा था, क्योंकि उसकी माँ का दूध नित्य प्रति तुम पी लेते हो। बछड़ा तृण खाकर निर्वाह करता है। उस दिन, सुनते हैं, तुमने एक घोड़े को भी दौड़ा कर मार डाला। शहर के तमाम घोड़ों में इस बात की चर्चा थी। उसमें मृतक के प्रति सहानुभूति और तुम्हारे प्रति घृणा-सूचक प्रस्ताव भी पास किये गये थे।

मालूम है, कितने ऊँट, घोड़ों और बैलों को तुमने इस प्रकार कष्ट दिया है, कितने पशुओं को लँगड़ा किया है, कितने पशुओं को बग्घी, मोटर के धक्के से गिरा दिया है, अच्छी सेवा का दम भरते हो। मुझे देखो, न कपड़े पहनता हूँ, न चटोरेपन से सम्बन्ध रखता हूँ। केवल सूखे तृण खाता हूँ। फिर भी बेंत, कोड़े और ठोकरें सहता हुआ नम्रतापूर्वक तुम लोगों की सेवा करता हूँ। इसी को सेवा-व्रत कहते हैं। तुम लोगों से सेवा कैसे सम्भव है। पहनने के लिए तुम्हें कीमती वस्त्र चाहिए, खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन, सेवा के लिए नौकर, रहने के लिए महल, टहलने के लिए अच्छे वाहन या मोटर। यात्रा करते हो तो मनों सामान एवं सामग्रियाँ तुम्हारे साथ चलती हैं, और तुम्हारे लिये हमें बोझा ढोना पड़ता है। जब अकाल पड़ता है तब हम लोग भूखे मरते हैं। पीने को पानी नहीं मिलता, परन्तु तुम्हारे बगीचों की फुलवारी को हरी-भरी बनाये रखने में गाँव भर के बैलों की शान्ति नष्ट हो जाती है। तुम्हारा समाज इस विषय में बहुत पतित है। लज्जा की बात है कि इस पर भी तुम अपने को हम से श्रेष्ठ समझते हो।

ऊँट की बात मेरे हृदय में चुभ गयी। मुझे ग्लानि होने लगी। अन्तरात्मा कहने लगी—मूर्ख, तू ऊँट से भी गया बीता है।

पास के खड़े हुए करील के वृक्ष ने सिर हिलाया और कहा—ऊँट सच कहता है।

तब मैंने कहा—प्रभो, मुझे ऊँट जितना आत्मबल तो दे दो।

सहसा आकाश में बिजली चमकी, मेघ गरजा। सुननेवालों ने सुना, सुननेवालों ने कहा—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी ?
जेहि तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमकहरामी।
मो सम कौन कुटिल खल कामी ?"

किसी ने कहा—कहनेवाला और सुननेवाला दोनों एक हैं।

किसी ने कहा—यह अन्तर्नाद है।

मैंने चिल्ला कर कहा—मुझसे सब अच्छे !

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए—अग्रसर, भ्रमण, कूपमण्डूक, निःस्वार्थ, पक्ष, अवकाश, ईर्ष्या-द्वेष और अन्तर्नाद।

(२) पर्यायवाची बताइए—पवन, क्रोध और पतित।

(३) विपरीतार्थक बताइए—पतित, कुटिल, खल, शान्ति।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) हवा हमारी क्या सेवा करती है ?

(५) लेखक की किस-किस से भेंट हुई और उन्होंने उससे क्या कहा ?

(६) सूर्य-लोक और चन्द्र-लोक से क्या तात्पर्य है ?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) भावार्थ लिखिए—

[अ] ऊँट की मुखाकृति....धिक्कार है।

[ब] हवा ने मेरी मूर्खता पर...अनुकरण करो।

[स] सहसा आकाश में बिजली चमकी....अन्तर्नाद है।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) सन्धि बताइए—गृहस्थाश्रम, परोपकार, निःस्वार्थ और सहानुभूति।

(९) 'उसमें मृतक के प्रति सहानुभूति और तुम्हारे प्रति घृणा-सूचक प्रस्ताव भी पास किए गये हैं।'—का वाक्य-विश्लेषण कीजिए।

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) पाठ का सारांश लिखिए।

(११) अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए—

खिलखिला कर हँस पड़ना, धूल उड़ाना, तरस आना और दम भरना।

—:०:—

: ३८ :

अजन्ता की चित्रकला

[प्राचीन भारत अपने साहित्य के लिए ही नहीं, अपनी कला के लिए भी प्रसिद्ध है। कला के क्षेत्र में भी जहाँ संगीत आदि की आश्चर्य-जनक उन्नति हुई है, वहाँ चित्रकला ने भी विशेष महत्त्व प्राप्त किया है। अजन्ता की चित्र-कला प्राचीन भारत की चित्र-कला का अत्यन्त सुन्दर नमूना है। जिन लोगों ने अजन्ता की गुफाओं और उन गुफाओं की दीवार तथा छतों पर बने हुए चित्रों को देखा है, उन्हें उनके निर्माण पर आश्चर्य होता है। प्रस्तुत पाठ में उसीका वर्णन किया गया है।]

विश्व की चित्रकला के इतिहास में अजन्ता की चित्रकला को विशेष महत्तव दिया जाता है। इसने पाश्चात्य देशों के कलाकारों को भी चकित कर दिया है। इसे देखने के लिए प्रति वर्ष संसार के कोने-कोने से अनेक कला-मर्मज्ञ आते हैं और इनके सौन्दर्य तथा इसके रचयिताओं की प्रशंसा करते नहीं अघाते।

अजन्ता बम्बई राज्य में है। यह उस राज्य के पूर्वी खानदेश का एक प्रसिद्ध स्थान है। बम्बई जानेवाली सेंट्रल रेलवे पर जलगाँव नामक एक स्टेशन है। यहाँ से अजन्ता की गुफा तक एक पक्की सड़क गयी है, जो लगभग ३० मील लम्बी है। यहाँ से यात्रियों को अजन्ता की गुफाओं को देखने के लिए जाने में बड़ी सुविधा होती है। यहाँ जाने के लिए और भी मार्ग हैं, पर उपर्युक्त मार्ग सबसे अधिक सरल और सुगम है।

आज से १३० वर्ष पूर्व अजन्ता की गुफाओं को कोई नहीं जानता था। [उस समय ये गुफाएँ वन-पशुओं, पक्षियों तथा भूले-भटकों को आश्रय दिया करती थीं और समय-समय पर संसार से विरक्त साधु-संन्यासियों के लिए भोजनालय का काम देती थीं। उन बेचारों को यह क्या मालूम था कि वे अपने इस कार्य से भारत की सर्वश्रेष्ठ कला का सर्वनाश कर रहे हैं।]

सन् १८१९ ई० में इस प्राचीन कला-भवन पर ईश्वर की कृपा हुई, उस समय अंग्रेजी सेना की एक टुकड़ी इन पहाड़ी प्रदेशों पर घूम रही थी। उसी टुकड़ी द्वारा सर्वप्रथम सभ्य संसार को इन गुफाओं का परिचय मिला और उसकी छान-बीन होने लगी। तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने यहाँ
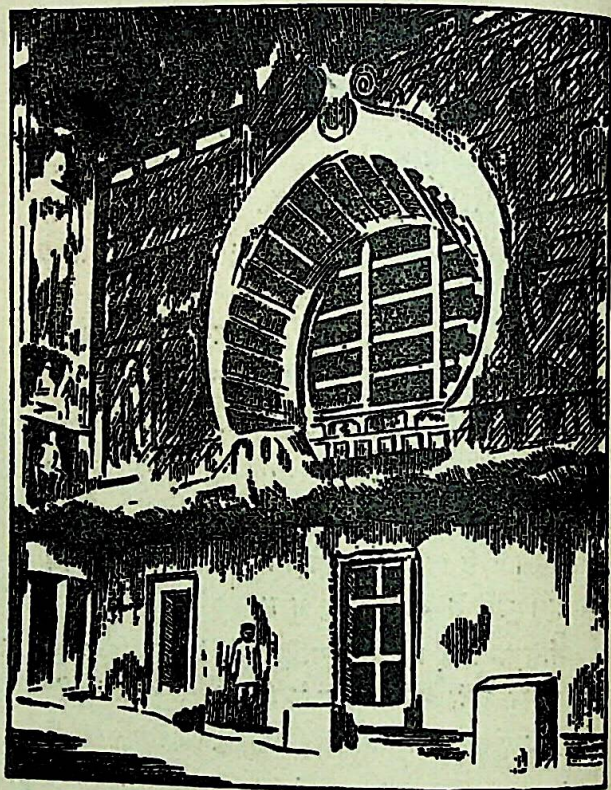
की दीवारों पर बने हुए चित्रों की नकल कराई और उन्हें सन् १८१५ ई० में प्रकाशित कराया। उसी वर्ष एक पुरातत्त्व-विभाग भी खोला गया। निजाम के पुरातत्त्व विभाग ने भी उन चित्रों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया।

अजन्ता के चित्रों के काल-निर्णय के सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कुछ कहना कठिन है, पर देखने से इतना अवश्य प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न

समय में भिन्न-भिन्न राजाओं की संरक्षता में इनकी रचना हुई। इन चित्रों में से कुछ तो अत्यन्त प्राचीन हैं और कुछ अर्वाचीन। एक चित्र फारस देश के एक राजदूत का है, जो भारत में आकर यहाँ के राजा को फारस के राजा की भेंट चढ़ा रहा है। विद्वानों ने इसे देख कर इसका रचना-काल ६२५-६२६ ई० निर्धारित किया है। कुछ चित्रों की रचना गुप्त-काल में भी हुई है। यद्यपि उस समय यह भाग साक्षात् गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित न था तथापि उसका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त था।

अजन्ता की प्रसिद्ध गुफाएँ एक अर्द्ध-गोलाकार पहाड़ी के मध्य भाग की चट्टानों को काट कर बनायी गयी हैं। इन गुफाओं की संख्या २९ है, जिनमें दो अगम्य हैं। शेष सभी देखी जा सकती हैं। एक ही पत्थर को काट कर उसके भीतर कमरे और प्रस्तर मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। इन कमरों की दीवारों पर एक प्रकार का पलस्तर लगा है और उस पर सफेदी करके सुन्दर चित्र बनाये गये हैं। ये पलस्तर इतने दृढ़ और सुन्दर हैं कि कई शताब्दियों के पश्चात् भी आज ये वैसे ही बने हुए हैं।

अजन्ता के चित्र अनेक भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। इनमें
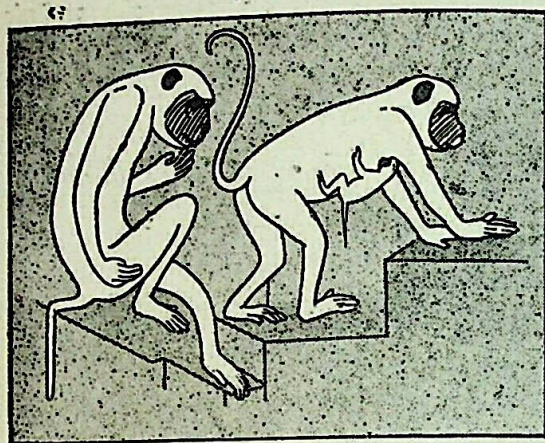
चित्रित कथानक भी अनेक प्रकार के हैं, पर इन चित्रों में भगवान् बुद्ध के चरित्र की कथाओं का चित्रण ही विशेष रूप से किया गया है। गौतम का जन्म ग्रहण करना, उनके महाभिनिष्क्रम, उनके सम्बोधि की प्राप्ति आदि घटनाओं का चित्रण अजन्ता के चित्रों में विशेष रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली फुटकर कथाएँ भी हैं, जैसे एक माता और पुत्र का बुद्ध को भिक्षा देना आदि। बुद्ध-सम्बन्धी चित्रों के अतिरिक्त राज-सभा और राजकीय जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ चित्र भी अङ्कित हैं, जिनमें राजकीय जुलूस के तथा हाथी के जुलूसवाले चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। ये चित्र बहुत सुन्दर हैं तथा इनके देखने से तत्कालीन वेश भूषा तथा रहन-सहन का पता चलता है। इस प्रकार अजन्ता के चित्र अनेक विषयों से विभूषित हैं, जिनमें भगवान् की जीवन-कथाओं की प्रधानता स्वाभाविक ही है। अजन्ता के चित्रों में जितने अङ्कित व्यक्ति हैं, चाहे वे धनाढ्य भूमिपति या निर्धन गृहस्थ हों, चाहे वे पुरुष हों या नारी, उन सबमें जीवन के प्रति

आनन्द-भावना है। उनके हृदय में जीवन के प्रति सुखमयी लिप्सा है। इसे कलाविदों ने एक स्वर से स्वीकार किया है]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए---कला-मर्मज्ञ, पाश्चात्य, प्रदेश, अगम्य, संरक्षता, निर्धारित, राजकीय, विभूषित और लिप्सा।

(२) विपरीतार्थक बताइए---प्राचीन, निर्माण और श्रेष्ठ।

(३) 'महाभिनिष्क्रमण' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) अजन्ता कहाँ और क्यों प्रसिद्ध है?

(५) पुरातत्तव विभाग से आप क्या समझते हैं।

(६) अजन्ता की चित्र-कला में क्या विशेषताएँ हैं?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(७) भावार्थ लिखिए---

[अ] अब उस समय ये गुफाएँ.....सर्वनाश कर रहे हैं।

[ब] अजन्ता के चित्रों में....स्वीकार किया है।

४—व्याकरण-सम्बन्धी

(८) व्याकरण से क्या हैं? राजकीय, स्वाभाविक, निर्धारित, साक्षात और सर्वत्र।

(९) समास स-विग्रह बताइए---भूमिपति, सर्वप्रथम, वेषभूषा और साधु-संन्यासी।

५—रचना-सम्बन्धी

(१०) अजन्ता की चित्रकला के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए।

(११) मुहावरों को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए--

एक स्वर से स्वीकार करना, अपने ऊपर भार लेना, प्रशंसा करते नहीं अघाते।

---:o:---

गङ्गा की शोभा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

[भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक सुप्रसिद्ध परिवार में सं० १९०७ में हुआ था। उन्होंने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पायी। घर पर ही उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और हिन्दी के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया। उन्होंने कई नाटक और अनेक कविताएँ लिखीं। वह हिन्दी के युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। उनके समय में हिन्दी का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी को ऊँचा उठाया। सम्वत् १९४१ में उनकी मृत्यु हुई। यहाँ उनकी एक रचना दी जाती है। इस रचना से उनकी काव्य-शक्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है।]

[१]

नव-उज्ज्वल जलधार हार-हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति॥
लोल-लहर लहि-पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥

सुभग-स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत ।
दरसन-मज्जन-पान त्रिविध-भय दूर मिटावत ।।
श्रीहरि-पद नख-चन्द्रकान्त मन-द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म-कमण्डल-मण्डन, भवखण्डन, सुर-सरबस ।।
शिव-सिर-मालति-माल, भगीरथ नृपति-पुण्य-फल ।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार - कल ।।
सगर-सुवन सठ-सहस-परस जल-मात्र उधारन ।
अगनित-धारा रूप धारि सागर संचारन ।।
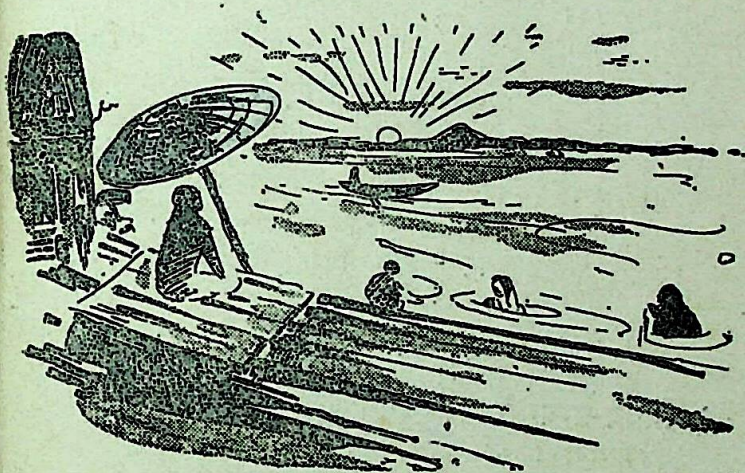
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यों जग धाई ।
सपने हूँ नहि तजी रही अंकम लपटाई ।।

(२)

कहूँ बँधे नव-घाट उच्च-गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत - जोहत ।।
धवल-धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ।
घहरत-घण्टा-धुनि धमकत धौंसा करि साका ।।

मधुरी-नौबत बजत कहूँ नारी-नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर-कर जुगल उछारत ।
जुग-अम्बुज मिलि मुक्ति-गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत ।
वारिधि नाते ससि-कलंक मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दर-ससि-मुख नीर-मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल-वेलि लहलही नवल-कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितही ठहराई ।
गंगा-छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—शब्दार्थ-सम्बन्धी

(१) अर्थ बताइए---उज्ज्वल, नृपति-पुण्य-फल, ब्रह्म-कमण्डल-म… गिरि-पति-हिम-नग, कंठहार, तितही और दीठि।

(२) तत्सम बताइए---सुवन, दीठि, ससि, संचारन, सरबस, … जुगुल और सपने।

(३) समुद्र, चन्द्रमा और कमल के लिए जो पर्यायवाची शब्द… हैं, उन्हें लिखिए।

२—विषय-सम्बन्धी

(४) भगीरथ की कथा संक्षेप में बताइए।
(५) गंगाजी को 'सुर-सरबस' क्यों कहा है?

३—भावार्थ-सम्बन्धी

(६) 'शिव-सिर-मालति-माल' और 'वारिधि नाते ससि-कलंक कमल मिटावत'---का भाव स्पष्ट कीजिए।
(७) गंगा जी के लिए कौन-कौन-सी उपमायें दी गयी हैं?

४—रचना-सम्बन्धी

(८) अपने शब्दों में गंगा की शोभा का वर्णन कीजिए।

---:०:---

संस्कृत अनिवार्य

[कक्षा ८]

कामना
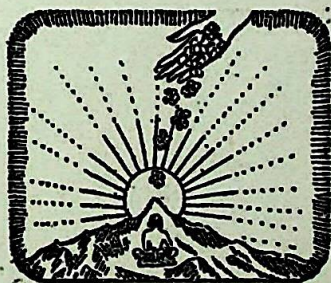
तमसो मा ज्योतिर्गमय

काले वर्षंतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ।।१।।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ।।२।।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि,
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥१॥

या कुन्देन्दुतुषारहार धवला, या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदंडमंडितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥२॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बोध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥३॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां,
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां,
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥४॥

अभ्यासाय

दो श्लोकों को कंठस्थ करो ।

--:०:--

द्वितीयः पाठः

परिवारः

दायादः—बान्धव, देयाद । मातुलः—मामा ।
मातामहः—नाना । पितामहः—दादा ।
मातामही—नानी । पितामही—दादी ।
पितृष्वसा—बुआ । पितृव्यः—चाचा ।
जामाता—दामाद ।
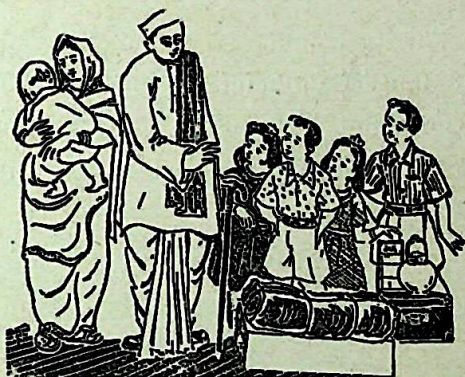
अरविन्दः—भो वारीन्द्र ! परिवारे कः कः भवति ?

वारीन्द्रः—अरविन्द ! त्वम् एतत् अपि न जानासि ? कुटुम्बम् परिवारम् वदति लोकः । माता पिता पुत्रः पुत्री च परिवारस्य मुख्याः सदस्याः भवन्ति । जनकः पिता, जननी माता च भवतः । तयोः पुत्रः पुत्री च परस्प भ्राता भगिनी च भवतः । भ्रातृषु कश्चन ज्येष्ठः, कश्चन कनिष्ठः कश्चन अनुजः, कश्चन सहोदरः भवति । एवम् भगिनीषु काचन अग्रजा, काचन अनुजा, काचन सहोदरा भवति । जननीजनकयोः आज्ञा-पालनम् सन्तानस्य प्रथमम् कर्त्तव्यम् अस्ति ।

अरविन्दः—दायादः कः ?

वारीन्द्रः—जनकस्य पिता पितामहः, जनकस्य माता पितामही

भवतः। मातुः पिता मातामहः, मातुः माता मातामही। पितामहस्य पिता प्रपितामहः पितुः भ्राता पितृव्यः, एतेषाम् समुदायः परिवारः दायादः भवति। एवं प्रमातामहादयः। मातुः भ्राता मातुलः, 'मामा' च भवति। मातुलस्य भार्या मातुलानी 'मामी' च भवति।
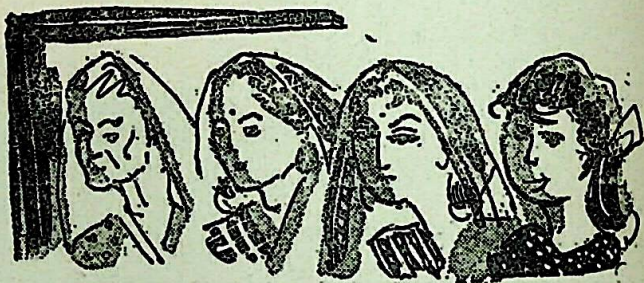
एवं पितुः भगिनी पितृष्वसाः तस्याः पुत्रः पैतृष्वसेयः। मातुः भगिनी मातृष्वसा। तस्याः पुत्रः मातृष्वसेयः। पितृव्यपुत्रः पितृव्यजः। भगिन्याः सुतः भागिनेयः। पुत्री दुहिता कथ्यते। दुहितुः पतिः जामाता, पुत्रः च दौहित्रः भवतः। भार्यायाः भ्राता श्यालः, भगिनी च श्याली भवतः। पत्युः भ्राता देवरः, भगिनी च नान्दा भवतः। भ्रातुः भार्या भ्रातृजाया, पुत्रः च भ्रात्रीयः भ्रातृजः। पुत्रस्य पुत्रः पौत्रः, पुत्री च पौत्री। पौत्रस्य पुत्रः प्रपौत्रः, पुत्री च प्रपौत्री भवतः। एवञ्च भारतीयपरिवारस्य विस्तारः। एते सर्वे दायादाः भवन्ति।

अभ्यासाय

हिन्दी में अनुवाद करो--

त्वम् एतत् जानासि। कुटुम्बम् परिवारम् वदति लोकः। एते सर्वं दायादाः भवन्ति। जनकस्य पिता पितामहः, माता च पितामही भवतः।

संस्कृत में अनुवाद करो--

तू यह जानता है। लोग कुटुम्ब को परिवार कहते हैं। ये सभी दायाद होते हैं। पिता के पिता पितामह और माता पितामही होती है।

तृतीय: पाठ:

पत्रवाहक:

मञ्जूषा—पिटारी। परह्यः—बीता हुआ परसों।
पत्रमंजूषा—लेटरबक्स। पत्रालयः—डाकखाना।
अत्रत्य—यहाँ का।

रमेन्द्रः—भोः नरेन्द्र ! मम पिता परह्यः प्रयागम् अगच्छत्। तेन ततः प्रेषितम् पत्रम् अद्य आगतम् इति आश्चर्यम् !

नरेन्द्रः—अत्र आश्चर्यस्य नास्ति किमपि कारणम् रमेन्द्र !

रमेन्द्रः—इतः कियद् दूरम् प्रयागः अस्ति। ततः आगते पत्रे कथं आश्चर्यम् नरेन्द्र ?

नरेन्द्रः—रमेन्द्र ! नात्र कश्चन आश्चर्यविषयः।

रमेन्द्रः—त्वत्कृते न स्यात् आश्चर्यविषयः। मत्कृते तु महान् आश्चर्यविषयः।

नरेन्द्रः—रमेन्द्र ! प्रयागस्तु समीपमस्ति। बहोः दूरात् सुदूरात् योरप देशात् पत्रम् द्वित्रैः दिवसैः प्राप्यते। टेलीफूनयंत्रेण तु परस्परं वार्तालापं कुर्वन्ति जनाः दूरस्थाः अपि।

रमेन्द्रः—माम् बोधय तत्।

नरेन्द्रः—एतत् चित्रम् पश्यसि रमेन्द्र ?

रमेन्द्रः—पश्यामि एतत् चित्रम् मित्र !

नरेन्द्रः—चित्रे एषः जनः किम् करोति ?

रमेन्द्रः—पत्रमञ्जूषातः पत्राणि निःसारयति एषः जनः ।

नरेन्द्रः—एषः जनः कः ?

रमेन्द्रः—एषः जनः पत्रालयस्य पत्रवाहकः । यः प्रतिदिनम् पत्राणि निःसारयति पत्रालयम् प्रापयति ।

नरेन्द्रः—एतादृशाः बहवः पत्रवाहकाः सन्ति अत्रत्य पत्रालये । ते सर्वे इत्थमेव पत्राणि आनयन्ति । पत्रालये बहवः लेखकाः देशानुसारं नगरानुसारं च एतेषां पत्राणां चयनम् कुर्वन्ति । तानि धूम्रयानेन जलयानेन वायुयानेन वा यथास्थानं गच्छन्ति । तत्र तत्रत्याः पत्रवाहकाः गृहे-गृहे तानि पत्राणि वितरन्ति । तथैव तव पितृदेवस्य पत्रम् प्रयागात् तव गृहे समागतं स्वल्पेन व्ययेन । स्वल्पे समये पत्रद्वारा कुशलवृत्तं विदितं भवति । तत् सम्यक् बोधः अभवत् न वा रमेन्द्र !

रमेन्द्रः—सम्यक् बोधः अभवत् । शासनस्य एषः प्रबन्धः प्रशस्तः ।

अभ्यासाय

हिन्दी में अनुवाद करो—

योरपदेशात् पत्रम् आगच्छति । एषः पत्रवाहकः मञ्जूषातः पत्राणि निःसारयति । एषः पत्रालयस्य पत्रवाहकः । शासनस्य एषः प्रबन्धः प्रशस्तः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

योरप देश से भी पत्र आता है । यह पत्रवाहक पत्र निकालता है । यह डाकघर का डाकिया है । सरकार का प्रबन्ध अच्छा है ।

सन्धि-विच्छेद करो—

नात्र, नास्ति, पत्रालय, नरेन्द्र ।

—:०:—

चतुर्थः पाठः

वनविशालता

शाल्मली—सेमर । आयतः—लम्बा ।

पनसः—कटहल । जम्बू—जामुन ।

दीर्घः—चौड़ा । मधूकः—महुआ ।

श्यामः—राम ! पुरतः एतत् चित्रम् कस्य ?

रामः—एतत् चित्रम् कस्यचन वनस्य ।

श्यामः—वदिष्यसि एते कीदृशाः वृक्षाः ।

रामः—अत्र केचन सरलवृक्षाः, केचन शिशप-पलाशवृक्षाः कुं
अश्वत्थः वटः पर्कटी शाल्मली अशोकः खर्जूरः च वनस्य
प्रकृतिसौन्दर्यम् वर्धयन्ति । ग्रामोद्याने आम्रवृक्षाः जम्बूवृक्षाः
मधूकवृक्षाः पनसवृक्षाः अधिकतरेण भवन्ति । जङ्गलस्य
प्रकृतिशोभा अतीव मनोहरा भवति । उपरि आकाशे
दीर्घायतवृक्षाणां हरीतिमा, अधस्तात् धरातले दूर्वाकुशकाशदलानि
प्रकृतिपरिच्छदानि इव कस्य रसिकजनस्य हृदयम् नाकर्षन्ति ?

श्यामः—वने एते के पशवः ?

रामः—अधस्तात् सिंहः, व्याघ्रः, वृकः, मृगः एते अत्रोपविष्टाः सन्ति ।
अपरः दन्तुलः एकः गजः वर्तते । एतेषाम् चीत्कारैः वनस्य
भीषणता भृशं भयावहा भवति । नगरे ग्रामे गावः वृषभाः
अश्वाः उष्ट्राः गर्दभाः अजाः च चरन्ति ।

श्यामः—उपरि विटपे कः ?

रामः—उपरि एकस्मिन् विटपे शुकः कूजति ! द्वितीये विटपे काकः
कटु रटति ।

श्यामः—वनस्य जलवायुः अपूर्वः शान्तिप्रदः स्वास्थ्यकरः भवति
तेन ऋषीणां आश्रमाः वनेषु एव भवन्ति स्म ।

हिन्दी में अनुवाद करो—

कस्मिन् विटपे शुकः कूजति ? एकस्मिन् विटपे शुकः कूजति। द्वितीये विटपे काकः कटु रटति। वनस्य जलवायुः कीदृशः ?

संस्कृत में अनुवाद करो—

किस डाली पर तोता बोलता है। एक डाली पर तोता बोलता है। दूसरी डाली पर कौआ रटता है। कौआ कहाँ रटता है ? वन का जलवायु कैसा है ?

सन्धि-विच्छेद करो—

दीर्घायत,: नाकर्षति, भयावहः, अत्रोपविशन्ति, ग्रामोद्याने।

——:o:——

पञ्चमः पाठः

परिहासः

मोदकारः—मोटर
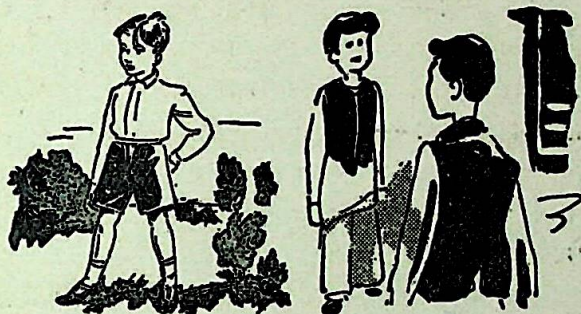
एकदा केचित् त्रयः सुहृदो भारतख्यातस्य मल्लस्य श्रीराममूर्तेर्मल्ल-वार्तायां संलग्नाः मार्गे गच्छन्ति स्म । तेषु एकः पुष्टः द्वितीयः सुपुष्टस्तृतीयः विपुटश्च ।

पुष्टः—अहो राममूर्तिः मोदकारम् अवरुणद्धि ! तस्य कियत् बलमस्ति ?

सुपुष्टः—भोः मित्र ! राममूर्तेः कार्यमेतत् त्वम् किं प्रशंससि । यदि राममूर्तिरेकेन बाहुना मोदकारस्यावरोधे प्रबलस्तदाहमपि तथैव तत्करणे सफलो भविष्यामि ।

पुष्टः—त्वम् कथम् करिष्यसि ? मा वद व्यर्थम् । स यत्करोति तत्त्वमपि करिष्यसीति विश्वासस्यायम् विषयः ?

सुपुष्टः—अरे किमाश्चर्यम् ? अहमपि 'मोदकारस्यावरोधे भविष्यामि सफलः इति सत्यम् वदामि । राममूर्तिस्तदानींतनमोदकारस्यावरोधकः आसीत् । अहमिदानींतनस्य बालमोदकारस्य (बालक्रीडनकस्य) अव रोधकः अस्मि । त्वम् कथं न विश्वासं करोषि ?

विपुष्टः—अरे बालिशौ ! नास्ति राममूर्तेः पौरुषप्रदर्शनं प्रशंसार्हम् । न चापि तत्र किमपि वैशिष्ट्यम् । स तु बलपूर्वकं मोदकारस्या-

वरोधे समर्थः। अहन्तु गतिशीलस्य मोदकारस्याग्रतो भूमें हस्तं प्रसार्य तस्यावरोधे भविष्यामि समर्थः।

(विपुष्टस्य परिहासेन पुष्टः सुपुष्टश्चापि अट्टहासे भूभौ अपतताम्।

अभ्यासाय

हिन्दी में अनुवाद करो--

राममूर्तिः कः ? तस्य व्यायामस्य कः प्रकारः, त्वम् कथं करिष्यसि ? अहमपि मोदकारस्यावरोधने भविष्यामि सफलः।

संस्कृत में अनुवाद करो--

राममूर्ति कौन थे ? उसके व्यायाम का क्या प्रकार है ? तू कैसे करेगा ? मैं भी मोटर रोकने में सफल होऊँगा।

सन्धि-विच्छेद करो;--

मोदकारस्यावरोधे, विश्वासस्यायम्, मोदकारस्याग्रतः, प्रशंसार्हम्।

---:o:---

षष्ठः पाठः

पञ्चायत्तम् (पञ्चायत)

पञ्चायत्तम्—पञ्चायत
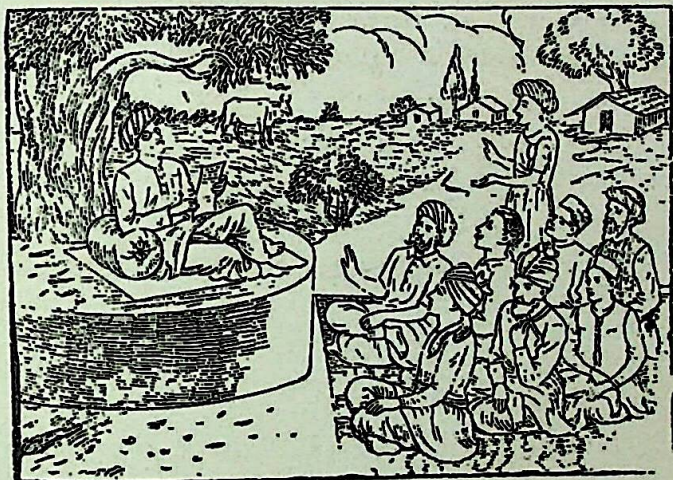
प्रतिग्रामं एका मुख्या सभा ग्रामसभा। यस्याः अधीनं भवति एकम् ग्राम-पञ्चायतनम्। यत्र ३० त्रिंशत ५० पञ्चाशत् वा सदस्याः ग्रामसभया निर्वाचिताः भवन्ति ?

गौराङ्गशासने नगरविकासः ग्रामह्रासः च अभवत्। स्वदेशीये शासने नगरविकासेन सह ग्रामविकासः परमावश्यकः। तेन शासनेन ग्रामाणां चापि विकासाय उत्कर्षाय च एषः प्रबन्धः कृतः। ग्रामपञ्चायतनम् ग्रामेषु मार्ग-परिष्कारे शिक्षासंघटने स्वास्थ्यसुधारे प्रयत्नशीलम् अस्ति। अर्थात् सुगम-सुलभशिक्षा सुलभन्यायः च ग्रामेषु मिलेत् इत्यर्थं ग्रामपञ्चायत्तम् यतते।

ग्रामीणानाम् अपराधविचाराय एकम् अभियोगपञ्चायतनम् भवति, यस्याधीनम् पञ्चष ग्रामपञ्चायतनानि भवन्ति। तत्तत् ग्रामपञ्चायतनम्

स्वस्वपञ्चसदस्यान् अभियोगपञ्चायतने प्रेषयति । ते सदस्याः सर्वे मिलित्वा स्वेषु उपसमितिद्वारा ग्रामीणानां दोषादोषं विचारयन्ति । दोषिणः दण्डयन्ति। ततः प्राप्तम् दण्डद्रव्यम् तस्य ग्रामपञ्चायतने याति । तदतिरिक्तं ग्रामस्य अनधिकृतम् जलस्थानम् भूक्षेत्रम् उद्यानम् वनम् वा तत्सर्वं ग्रामपञ्चायतनस्याधीनम् भवति । तेभ्यः प्राप्तः आयः पञ्चायतनस्य कोषे गच्छति। तेन ग्रामपञ्चायतनस्य कार्यम् चलति ।

वस्तुतः एतेन महान् उपकारः ग्रामीणानाम् भवति । स्वल्पेन व्ययेन सर्वं कार्यम् सुलभम् । प्रकारान्तरेण रामराज्यस्यैतत् प्रकल्पनम् ।

मन्ये तत्राधुना काचन वर्तते विकृतिः । कालान्तरे सा परिष्कृता भविष्यति ।

अभ्यासाय

हिन्दी में अनुवाद करो—

उपकारो भवति । परिष्कृता भविष्यति । जनविकासः परमावश्यकः। प्रयत्नशीलः अस्ति ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

उपकार होता है । स्वच्छ होगी । वनविकास आवश्यक है । प्रयत्नशील है ।

सप्तमः पाठ

मर्यादापुरुषोत्तमः

वनौकसः—वन में रहनेवाले

हिन्दीभाषायां रामचरितमानसस्य रचयिता तुलसीदासः। किञ्च संस्कृत-रामायणस्य रचयिता तु वाल्मीकिमुनिः तस्य महान् ग्रन्थः रामायणम्। एतत् रामायणम् संस्कृतसाहित्यस्य अपूर्वग्रन्थः। यद्यपि संस्कृतिसाहित्ये अध्यात्म-रामायणम्, अद्भुतरामायणम् इति अनेकरामायणग्रन्थान् अलिखन् संस्कृत-महाकवयः। किन्तु वाल्मीकिरामायणम् साम्यं कर्तुं अन्यत् रामायणम् न पारयति।

एतेषाम् सर्वेषाम् रामायणानाम् कथानायकः पुरुषोत्तमः भगवान् रामचन्द्रः एव। यस्य जन्मभूमिः राजधानी च अयोध्यानगरी एव। या अद्यापि सरयू-

नदीतीरे स्थिता वर्त्तते। यद्यपि रघुवंशे अनेके राजानः महाराजाः अभवन्, किञ्च भगवता श्रीरामचन्द्रेण समानः तत्रैकः अपि नाभवत् कश्चन। महाराजदशरथस्य पुत्रेषु एषः श्रीरामचन्द्रः ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च सर्वात्मना। सर्वदैव मर्यादापुरुषोत्तमः श्रीराघवेन्द्रः परमोन्नतः परमैश्वर्यश्च लोके। स च स्वजीवनस्य परमैश्वर्यम् परमौदार्यं परमौत्कर्ष्यं शैशवात् आरभ्य जीवनपर्यन्तम् अदर्शयत्।

विमातुः श्रीकैकय्याः आग्रहेण महाराजदशरथस्य आदेशेन श्रीरामचन्द्रः स्वभार्यया सीतया भ्रात्रा श्रीलक्ष्मणेन सह चतुर्दशवर्षाणि दण्डकारण्यं सहर्षम् अगच्छत् अवसच्च वनौकसाम् मध्ये। एकदा दुर्दैववशात् यदा रावणः अहरत् भगवतीं सीतादेवीं, तदा वानराणां साहाय्येन श्रीरामचन्द्रः लंकाधिपतिं रावणम् अहन्। ततः सीताम् च आनयत्। चतुर्दशवर्षानन्तरं रामचन्द्रः श्रीसीतया लक्ष्मणेन सह सानन्दं पुष्पकविमानेन परावृत्तः मातृभूमिम्। परावर्त्तने महावीरः वानरेन्द्रः सुग्रीवः राक्षसेन्द्रः विभीषणश्च सङ्गताः आसन्। एतत् सर्वम् राम-चरितम् रामायणे लिखितम् अस्ति सविस्तरम् श्रीवाल्मीकिमुनिना।

तत्रैकः =तत्र+एकः =अ+ए=ऐ		आकार या आकार के आगे ए, ऐ
परमैश्वर्यम्=परम+ऐश्वर्यम्=अ+ऐ =ऐ		ओ औ हो तो ए ऐ के साथ
वनौकः =वन +ओकः =अ+ओ=औ		मिलकर ऐ और ओ औ के साथ
परमौदार्यम्=परम+औदार्यम्=अ+औ=औ		मिलकर औ होता है।

एकः+एकः, मत+ऐक्यम्, विद्या+एका, विद्या+ऐश्वर्य, जल+ओघः धन+औत्कण्ठ्यम् में सन्धि करो।

अभ्यासाय

हिन्दी में अनुवाद करो--

रामायणस्य कः रचयिता? कः वाल्मीकिमुनिः? रामायणं को दृशो ग्रन्थः? अयोध्या रघुवंशस्य राजधानी?

संस्कृत में अनुवाद करो--

हनुमान कौन थे? रामचन्द्र लंका से कैसे लौटे? यह रामायण में लिखा है।

अष्टमः पाठः

रामस्य गुणाः

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियंतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥१॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥२॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥४॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिवेशः समाधिमान् ॥५॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य, स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेद – वेदांगतत्त्वज्ञो धुनुर्वेदे च निष्ठितः ॥६॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥७॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥८॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥९॥
स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥१०॥
उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा ।
सदैवाव्ययभावेन यथार्थस्य हि वाचकः ॥११॥
कुर्वीत सङ्गतं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः ।
प्राप राघवसङ्गत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः ॥१२॥

गुणस्तवेन कुर्वीत महतां मानवर्धनम् ।
हनूमानभवत् स्तुत्या रामकार्यभरक्षमः ॥१३॥
जन्मावधि न तत् कुर्यादन्ते सन्तापकारि यत् ।
सस्मारैकशिरः शेषः सीताक्लेशं दशाननः ॥१४॥
अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥१५॥

अभ्यासार्थ

इस पाठ के दो श्लोक कंठस्थ करो ।

सन्धि-विच्छेद करो—

विशालाक्षः, गुडाकेशः, विपुलांसः ।

—:०:—